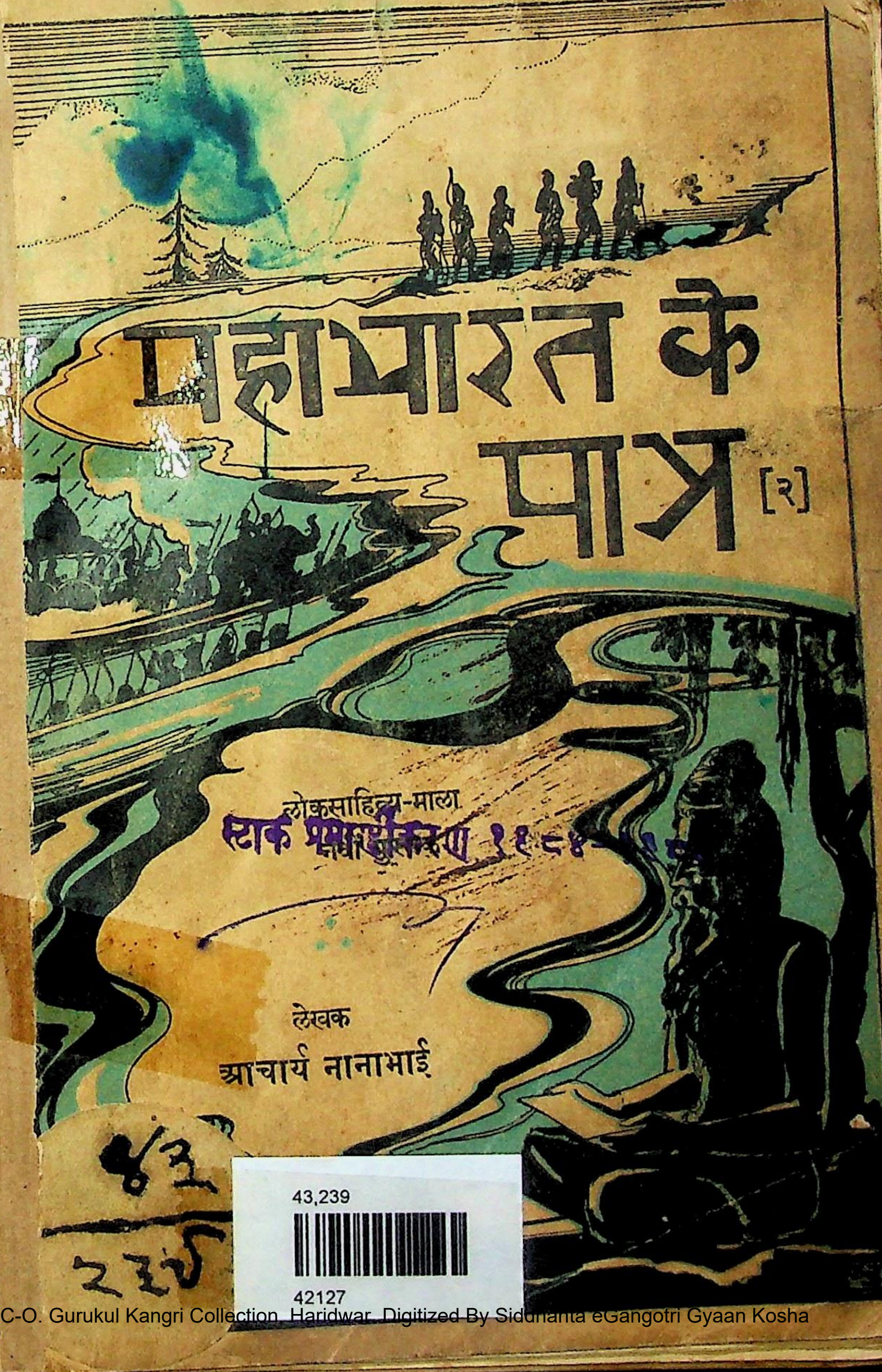

महाभारत के पात्र [२]
लोकसाहित्य-माला
लेखक
आचार्य नानाभाई

सस्ता साहित्य मण्डल

सर्वोदय साहित्य माला : अठहत्तरवाँ ग्रन्थ (२)

[लोक साहित्यमाला : नवीं पुस्तक]

[७८ : २]

महाभारत के पात्र

[दूसरा भाग]

लेखक

आचार्य नानाभाई

प्रस्तावना लेखक

श्री हरिभाऊ उपाध्याय

सस्ता साहित्य मण्डल
दिल्ली :: लखनऊ

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री
सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली

संस्करण
अगस्त, १९३९ : २०००
मूल्य
आठ आना

मुद्रक
एस. एन. भारती,
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
नई दिल्ली

इसकी विशेषता

मनुष्य दैनिक जीवन में जितना देखा जाता है उससे कहीं अधिक प्रसंग-विशेष पर वह अधिक चमक के साथ देखा, परखा और पहचाना जा सकता है। दैनिक जीवन-क्रम में ऐसी एक-रागिता होती है कि सूक्ष्म दृष्टि ही किसीको जल्दी पहचान पाती है। मगर जीवन की विशेष घटनायें और विशेष प्रसंग ऐसे होते हैं कि जो मनुष्य को बरबस खींचकर आँखों के सामने चमका देते हैं और राह पर चलनेवाला भी उसे अपनी आंखों में उतार लेता है। इसलिए चरित्र-चित्रण वर्णनात्मक की अपेक्षा घटनात्मक अधिक प्रभावकारी होता है।

महाभारत के पात्र का दूसरा भाग—भीम और अर्जुन—मैंने पढ़ा। चरित्र-चित्रण का यह आम नमूना है। श्री नानाभाई की समर्थ लेखनी ने भीमसेन और अर्जुन को चलता-बोलता हमारे सामने खड़ा कर दिया है। इनका जीवन पढ़ते हुए उपन्यास से भी अधिक तन्मयता का अनुभव होता है और पाठक प्रभावित होता चला जाता है।

इसका पहला भाग भी मैंने पढ़ा है। ये सब पात्र अपने संस्कार और स्वभाव के वशवर्ती हो बरतते तो हैं; परंतु प्रत्येक के जीवन में एक ऐसा समय आता है जब वह गहरे आत्म-निरीक्षण में डूबता है और अपने दुष्कर्मों पर पश्चात्ताप करता है। प्रत्येक मनुष्य जब कोई काम करता है तब अधिकांश में वह उसे अच्छा समझ करके ही करता है; परंतु सभी समय, सभी अवसरों पर उसकी बुद्धि समतोल और निर्विकार नहीं रहती। ऐसी सात्विकता मनुष्य की बुद्धि में तभी आ सकती है और रह सकती है जब वह उसे स्वार्थ, अहम्, या रागद्वेष के भाव से दूर रख

सके। जबतक मनुष्य में कुछ भी लोकैषणा या महत्वाकांक्षा बाक़ी है या उसे कुछ भी लोकसिद्धि करना है तब तक उसके विचारों, भावों और कार्यों का सर्वांश में निर्दोष रहना असंभव है। लेकिन जाग्रत, साधनाशील कर्तव्य-पालक और लोकसेवक के जीवन में ऐसे प्रसंग आते ही रहते हैं जब वह क्षुद्रताओं से, मलिनताओं से और बाहरी उपाधियों से ऊपर उठ कर अंतरतम में प्रवेश करता है और हंसकी तरह दूध और पानी को अलग करता है। जो मनुष्य ऐसी प्रवृत्ति रखते हैं वे गिरते-पड़ते भी आगे बढ़ते चले जाते हैं और अन्त में शान्ति और समाधान पाते हैं। इसके विपरीत जो बाह्य जगत् में उसकी उपाधियों और आकर्षणों में ही डूबता-उतराता रहता है वह महान् दिखते हुए भी महान् कार्यों का कर्ता कहलाते हुए भी, किसी भी क्षण धड़ाम से गिर सकता है। कौरवों और पांडवों में यही फ़र्क था। पांडव सभी सुसंस्कृत, निर्दोष, निर्विकार और धर्मात्मा थे, सो बात नहीं। इसी प्रकार कौरवों में सभी नराधम और दुष्टात्मा थे, ऐसा नहीं कह सकते; परन्तु पांडवों को जब कभी धर्मपथ छोड़ना पड़ा तो उनके मन को उस समय भी कष्ट हुआ; क्योंकि वे अपने कर्तव्य और धर्म के प्रति जाग्रत थे। युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण के-जैसे मार्ग-दर्शकों के निकट रहने के कारण। उधर कौरव, भीष्म और विदुर के-जैसे नीतिज्ञों के रहते हुए भी अन्याय और अत्याचार करने में उलटा अभिमान समझते थे; क्योंकि वे लोकैषणा में डूबे हुए थे और इसलिए मदान्ध हो गये थे। पांडवों के सामने जहाँ कर्तव्य-पालन तथा न्यायोचित अधिकार की प्राप्ति मुख्य थे तहाँ कौरवों के सामने 'येनकेन प्रकारेण' राज्याधिकार, राज्यविस्तार और राज्योपभोग मुख्य था। पाँडवों में न्याय, धर्म और परमार्थ की प्रवृत्ति मुख्य थी, कौरवों में योग ऐश्वर्य की वृत्ति। इसीलिए कौरव भीष्म और विदुर के सदुपदेशों और

श्रीकृष्ण के सत्परामर्शों से लाभ न उठा पाये और पांडवों नें हर महत्व-पूर्ण और आन-वान के प्रसंग पर श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर के निर्णयों का स्वागत किया और उनसे लाभ उठाया। तिस पर भी श्रीकृष्ण तक के लिए यह नहीं कह सकते कि उनसे धर्म या आत्मा के प्रतिकूल कोई बुरा काम न हुआ हो। मगर श्री नानाभाई के इन चरित्र-चित्रणों की खूबी यही है कि प्रत्येक पात्र किसी-न-किसी अवस्था में आत्मनिरीक्षण करता है और पश्चात्ताप की पुनःस्थिति में अपने-अपने कृत-कर्मों का विश्लेषण आप ही करता है। यह 'महाभारत के पात्रों' का अमूल्य धन और देन है।

एक और विशेषता इसमें है। जो घटनायें अगम्य और रहस्यपूर्ण हैं उन्हें बुद्धिगम्य बनाने का प्रयत्न इसमें किया गया है। बुद्धि का यह स्वभाव ही है कि वह हर चीज को अपनाना चाहती है और अपनी पहुँच के परे की वस्तुओं के विषय में भी अपनी शक्ति पर कुछ निर्णय करना पसंद करती है। बुद्धिशील श्री नानाभाई ने भी इन पात्रों के रहस्यपूर्ण और दुर्बोध प्रसंगों का बौद्धिक स्पष्टीकरण करने का समर्थ प्रयत्न किया है।

अनुवाद में मूल गुजराती के भावों की और प्रवाह की अच्छी रक्षा की गई है और पहले भाग में भाई वियोगी हरिजी ने जिस 'गुजरातीपन' की तरफ़ इशारा किया था, वह भी इस दूसरे भाग में नहीं पाया जाता। मुझे आशा है कि हिन्दी-संसार इसकी भी उचित क़द्र करेगा।

देहली
४-७-३९

—हरिभाऊ उपाध्याय

पात्र-परिचय

भीमसेन

: १ :

लाक्षागृह

"खड़ा रह, दुष्ट ! खड़ा रह ! अभी तेरी मरम्मत करता हूँ !" वारणावत के राजमहल में पलंग पर पड़े-पड़े भीमसेन सपने में चिल्ला उठा ।

"क्यों, बेटा भीम ! क्या है ?" माता कुन्ती ने उठकर उसके शरीर पर हाथ फेरते हुए कहा ।

कुन्ती के हाथ का स्पर्श होते ही भीमसेन जग पड़ा और कुन्ती की ओर एकटक देखने लगा ।

"बेटा ! क्या है ?"

"माँ ! कौन, तू है ?" कहकर भीम कुन्ती के गले लिपट गया ।

"कहो, क्या था ? बेटा, तुम चौंक क्यों गये ?"

"कुछ नहीं, माँ ! मुझे एक स्वप्न आया था । कोई राक्षस तुम्हें और भाईसाहब को उठाकर ले जा रहा था । इसलिए मैं उसके पीछे भागा ।"

"मैं तो यह तुम्हारे पास ही हूँ ।"

"लेकिन भाई साहब ? वह कहाँ हैं ?"

"देख वहाँ, किसी गहरे विचार में पड़ा हो ऐसे बैठा है ।"

"लेकिन माँ, सच कह दूँ ? अब हम लोगों को इस महल में

नहीं रहना चाहिए। वारणावत गाँव में रहे, तबतक वे दिन कब और कैसे बीत गये यह मालूम भी नहीं पड़ा। लेकिन जबसे इस महल में आये हैं तबसे एक रात भी ऐसी नहीं बीती जो कोई सपनान दीखा हो।" भीम उठकर बैठ गया।

"स्थान-परिवर्त्तन होने पर बहुत बार ऐसा हो जाता है।" कुन्ती बोली।

"स्थान-परिवर्त्तन क्या? इस महल में कोई ऐसी बदबू आती है कि सिर भिन्ना उठता है। यों तो यह महल बिलकुल नया है, सुविधा भी इसमें हर बात की है, लेकिन पता नहीं कहाँसे कोई ऐसी अजीब बदबू आती है कि चैन नहीं पड़ती!" भीम ने मुँह बनाकर कहा।

"पुरोचन तो कहता था कि महल की भीतें अभी हाल की ही बनी हुई हैं और उनका रङ्ग-रोग़न भी अभी सूखा नहीं है, इसलिए बदबू आती है। थोड़े दिन के बाद यह बदबू-वदबू कुछ भी नहीं रहेगी।" कुन्ती ने भीम के बालों को संवारते हुए समझाया।

"लेकिन माँ, ताज्जुब तो यह है कि जब पुरोचन मेरे पास आता है तब यह बदबू और बढ़ जाती है!" भीम बोला।

"बेटा, यह तू क्या कहता है! वह बेचारा तो हमारी हाज़िरी में हमेशा कमर कसे तैयार रहता है, यह तू नहीं देखता?" कुन्ती ने भीम के माथे पर हाथ फेरते हुए कहा।

"माँ!" युधिष्ठिर अपने विचारों से चौंक पड़े हों ऐसे बोले—"भीमसेन ठीक कहता है। शास्त्र में लिखा है कि जैसे

पदार्थों में बदबू आती है वैसे ही आदमियों में भी आती है।"

"चूल्हे में जाय तुम्हारा शास्त्र! आदमी में यों ही कहीं बास आती है? भीम, तू तो निरा पागल ही रहा। दुर्योधन ने जब लड्डू में ज़हर खिलाया था तब तो लड्डू में ज़हर की बास नहीं आई, और इस पुरोचन में तुझे बास आती है! तेरी नाक में भर क्या गया है।" कुन्ती ने भीम के नथनों को सहलाते हुए कहा।

"माँ! तुम मानो या न मानो, लेकिन ज़हर के लड्डू खाने बैठा था उस समय मुझे अन्दर-ही-अन्दर जैसी घिन आरही थी, उसी तरह की जबसे हम लोग इस महल में आये तबसे आ रही है!" भीम बोला।

"यह तो यों ही। लो यह सहदेव भी आगया। कहो, क्या ख़बर है?" कुन्ती ने पूछा।

"हस्तिनापुर से एक आदमी आया है, वह भाईसाहब से मिलना चाहता है।" सहदेव ने कहा।

"किसने भेजा है?" भीम ने पूछा।

"वह कहता है कि मुझे महात्मा विदुर ने भेजा है।" सहदेव बोला।

"अच्छा, उसको यहाँ भेज दो। अर्जुन क्या कर रहा है?" युधिष्ठिर बोले।

"शङ्कर के मेले में थोड़ा-सा जो देखने को रह गया था उसको देखने के लिए वह तो कभीके नकुल के साथ वहाँ गये।" सहदेव जवाब देकर चला गया।

सहदेव के जाने के थाड़ी देर बाद विदुर का भेजा हुआ आदमी आया।

"कहो, कहाँसे आये हो ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"हस्तिनापुर से, महाराज !"

"तुमको विदुर चाचा ने भेजा है ?"

"हाँ, महाराज !"

"तुमको विदुर चाचा ने ही भेजा है या हमारे किसी दुश्मन ने, इसकी क्या पहचान ?" भीम ने आनेवाले आदमी की नज़र-से-नज़र मिलाकर कहा।

"पहचान है। आप सब जब हस्तिनापुर से रवाना हुए उस समय महात्मा विदुर ने युधिष्ठिर को एक गुप्त बात कही थी, उसकी निशानी मुझे विदुरजी ने दी है।" उस आदमी ने बेधड़क जवाब दिया।

"भाई साहब ! वह कौन-सी गुप्त बात थी ?" भीम ने पूछा।

"क्या उस बात का अब वक्त आ गया ?" युधिष्ठिर ने चिन्तातुर होकर आने वाले से पूछा।

"हाँ, महाराज ! उस आपत्ति का समय अब आ गया है।" उस आदमी ने गम्भीर होकर कहा।

"फिर आपत्ति !" कुन्ती घबराई।

"भाई साहब, चाचाजी ने क्या कहा है ? मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आया।" भीम बोला।

"माँ, भीमसेन ! लो तो सुनो। हम लोगों को जिस महल में

रक्खा गया है उस महल के साथ ही हम छहों को ज़िन्दा जला देने का दुर्योधन का मनसूबा है।" युधिष्ठिर ने समझाया।

"बेटा! तुम यह क्या कह रहे हो?" कुन्ती व्याकुल हो गई।

"मैं सच कहता हूँ। इस महल की तमाम दीवारें घी, तेल, माँस, चरबी, राल, सन, लाख आदि ऐसी चीज़ों से बनाई गई हैं जो तुरन्त जल उठनेवाली हैं।" युधिष्ठिर कहने लगे।

"तब तो यही कहो न कि इन दीवारों में से ही बास आती है?" भीम बोला।

"और हम लोगों को अपने विश्वास में भुलाये रखकर ज़िन्दा जला देने के लिए ही पुरोचन को यहाँपर रक्खा गया है।" युधिष्ठिर ने सब बात खोलकर रखदीं।

"मुए पुरोचन! तेरा सत्यानाश हो! तेरे घर में कोई दिया जलाने वाला भी न रहे!" कुन्ती के मुँह से सहसा निकल पड़ा।

"ये सारी बातें जब हम लोग हस्तिनापुर से चले तो विदुर चाचा ने मुझे दूसरा कोई न समझ सके ऐसी भाषा में जतला दी थीं।" युधिष्ठर फिर बोले।

"और फिर भी हम लोग वारणावत में आये!" भीम भभक उठा।

"भाई भीमसेन! दूसरा रास्ता ही नहीं था। अभी हमें हस्तिनापुर में आये ही कितने वर्ष हुए हैं? राज्य का सारा ख़ज़ाना दुर्योधन के हाथ में है; पितामह, द्रोण आदि हमें कितना ही चाहते हों, फिर भी जिसका अन्न खाते हैं उसीको आशीर्वाद

देंगे। ऐसी हालत में हम वारणावत में न आये होते तो हस्तिनापुर में ही दुर्योधन छिपकर हम लोगों का काम तमाम कर देता।" युधिष्ठिर दुःख के साथ कहने लगे।

भीमसेन से न रहा गया : "तो हम क्या हमेशा ही दुर्योधन से डरते रहेंगे ? भाई साहब ! आप यह क्या कह रहे हैं ? मुझे अगर यह मालूम होता तो मैं यहाँ आता ही नहीं, और हस्तिनापुर ही में दुर्योधन से लड़ लेता।"

"बेटा, ज़रा शान्त हो। जिस पापी ने तुझे लड्डू में ज़हर खिलाकर गंगा में फेंक दिया वह और क्या नहीं कर सकता ? मैंने तो उसी दिन तेरी आशा छोड़ दी थी।" कुन्ती बोलीं।

"पाण्डु-पुत्र क्या इतनी आसानी से मरने के लिए पैदा हुए हैं ?" भीम बोला।

"तुम तो मेरी अनेक उछलती हुई उमंगों को पूरा करने के लिए ही पैदा हुए हो। बेटा ! दुनिया में माँ लड़के को नौ महीने पेट में रखती है और मौत को भी बुलानेवाली प्रसूति का कष्ट उठाती है, वह यह सब किन आशाओं को लेकर करती है, यह तुम पुरुष क्या जानो ? मुझे अच्छी तरह याद है कि पुत्र का मुँह देखने के लिए तुम्हारे पिता कितने आकुल हो रहे थे। मैं तो तुम्हारी जननी हूँ। तुम पैदा हुए तब तुम्हारे पिता को कितनी खुशी हुई थी !" कुन्ती उन दिनों को याद करती हुई बोली।

"तो फिर माँ ! मुझे तो आज्ञा दो। मैं आज ही हस्तिनापुर जाकर दुर्योधन के साथ लड़ लूँ।"

"बेटा, इतनी जल्दी न कर।" कुन्ती बोली।

"भाई भीमसेन! अभी हम लोगों को कुछ समय तरकीब से काम लेना पड़ेगा।" युधिष्ठिर धीरे-से समझाने लगे। "थोड़े समय बाद हम लोग अपने पैरों पर खड़े होजायेंगे। दस-पाँच वीर राजा हमारे साथ हो जायेंगे, द्रव्य की भी थोड़ी अनुकूलता होगी और लोगों पर हमारा प्रभाव भी ज़्यादा पड़ने लगेगा। तब फिर हम जो कुछ करना चाहेंगे वह करा सकेंगे। इसी विचार से उस दिन मैंने विदुर चाचा का कहना मान लिया और हम सब लोग यहाँ आ गये।"

"तो फिर, आप बड़े हैं, सोच-समझकर जो ठीक समझें वही करें।" भीम ने धीमी आवाज़ में कहा।

भीम को शान्त करके युधिष्ठिर उस आदमी की ओर फिरे: "तो कहो, तुम हमारी क्या मदद करोगे? विदुर ने तुमसे क्या कहा है?"

"महात्मा विदुर का मुझे हुक्म है कि पुरोचन कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन लाख के महल में आग लगावेगा; इसलिए तुम पहले जाकर एक बड़ी-सी सुरङ्ग बनाओ। उस सुरंग का एक मुँह महल में रखना और दूसरा सीधा गंगा नदी के किनारे निकले, ऐसा करना।"

"दूसरा मुँह तो आवेगा दुर्योधन के महल के बीचोंबीच।" भीम बोला।

"भीमसेन, शान्त रहो। अच्छा, तो तुम सुरंग तैयार करो।

इसकी तैयारी में कितने दिन लगेंगे ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"दस दिन काफ़ी हैं।"

"तो फिर आज से ही काम शुरू कर दो।"

"जैसी महाराज की आज्ञा।" कहकर वह आदमी चला गया।

"बेटा युधिष्ठिर, जबसे यह बात सुनी है तभीसे मेरा हृदय काँप रहा है। अभी तुम्हारे नसीब में ऐसे और कितने दिन लिखे होंगे, इसका जब मैं विचार करती हूँ तो आँखों के आगे अँधेरा छा जाता है। मैं वसुदेव की बहन और पाण्डु की रानी हूँ। जब तुम लोगों को लेकर बन से हस्तिनापुर आने के लिए रवाना हुई तब ऋषि-मुनियों ने तुम लोगों को आशीर्वाद दिया था कि इन पुत्रों के भाग्य में चक्रवर्ती राज्य लिखा है। यह भीम छोटा ही था, तब एक बार मेरी गोदी में से नीचे गिर गया तो फ़र्श का पत्थर टुकड़े-टुकड़े हो गया था। इसी मेरे बलवान भीम का आज दुश्मन से बचने के लिए तरकीबें सोचनी पड़ती हैं। इससे मेरा हृदय विंधा जाता है।" कुन्ती की आँखें भर आईं।

"और ये नकुल-सहदेव!" कुन्ती की आँखों में से आँसू टपकने लगे। "इससे तो अच्छा होता कि मैं भी माद्री की तरह तुम्हारे पिता के साथ चली जाती। लेकिन मेरे भाग्य में तो यह सब देखना बदा था!"

"माँ, माँ! इस तरह क्यों रोती हो?" भीम दीन बन गया।

"रोऊँ नहीं तो क्या करूँ? अपने बच्चों को तड़पते देखकर बेचारी माँ रोवे नहीं तो क्या करे?"

"माँ ! ऐसी अधीर मत बन। हम तेरी कोख से पैदा हुए हैं। हमारी नसों में क्षत्रिय का ख़ून बह रहा है। आज अगर रात है तो कल सुबह अवश्य होगी और पूर्व दिशा में नवप्रभात की लाली निकलेगी।" युधिष्ठिर उत्साह में आकर बोले।

"माँ ! अगर तू कहे तो कुलाम डंडे के खेल में जिस तरह नीम के पेड़ पर से तमाम निबोलियों को खिरा देता था उसी तरह इन सब भाइयों को गिरादूँ और तेरी गोदी में सारे हस्तिनापुर का राज्य रख दूँ।" भीम से न रहा गया।

"बेटा भीम ! तुम नहीं जानते। तुमने मेरे पेट से जन्म लिया है और बचपन से ही जंगलों में ऋषि-मुनियों के सहवास में रहे हो, इसलिए तुम छल-कपट की बातें बिलकुल नहीं जानते। हस्तिनापुर के भव्य महल के अन्दर रोज़ कितने षड्यंत्र रचे जाते हैं, यह जानना हो तो जाकर माता गंगा-यमुना से पूछो ! उनका गहरा नीर इन बातों का पुराना साक्षी है। इसलिए आज तो जिस तरह बचा जा सके उस तरह बचना ही एक मार्ग है।" कुन्ती बोली।

"तब फिर, जब सुरङ्ग तैयार हो जाय तो हम लोग ही क्यों न इस महल में आग लगा दें ?" युधिष्ठिर बोले।

"ठीक है भाई साहब, बिलकुल ठीक ! मैं सारे महल में आग लगा दूँगा और उस पापी पुरोचन को तो सबसे पहले जलाऊँगा।" भीम बोला।

"ज़रूर। महल में आग लगाकर हम सब उस सुरङ्ग के

रास्ते बाहर निकल जायेंगे। वहाँ गंगा के किनारे विदुर ने नाव तैयार कर रक्खी होगी, उसमें बैठकर हम सब गंगा के उस पार पहुँच जावेंगे।" युधिष्ठर ने कहा।

"चलो, अब मन कहीं शान्त हुआ।" कुन्ती बोली।

"तो भीम! अब सुरङ्ग के तैयार होने का ध्यान रखना। तबतक हमारी बातों की किसीको कानोंकान ख़बर न हो, इसका पूरा ध्यान रहे।" युधिष्ठिर ने कहा।

सुरङ्ग तैयार हो जाने पर किस तरह महल जलाया जाय और किस तरह पुरोचन को ख़त्म किया जाय, इसके मनसूबे बाँधता हुआ भीमसेन बग़ीचे में घूमने लगा। कुन्ती रसोई के अपने काम में लगी और युधिष्ठिर महाराज नगर में अर्जुन और नकुल को खोजने चले गये।

: २ :

हिडिंबा राक्षसी

वारणावत के लाख के महल को जलाकर पाँचों पाण्डव तथा कुन्ती सुरङ्ग के रास्ते गंगा के किनारे पहुँचे और वहाँसे नाव में बैठकर उस पार गये। वहाँ से उन्हें जंगलों में होकर जाना था।

उस ज़माने में यह सारा प्रदेश बीहड़ झाड़ियों से भरा हुआ था और इसपर राक्षसों का राज्य था। राक्षस थे तो आर्यों से भिन्न जाति के, लेकिन थे मनुष्य ही, और हमारे देश के अनेक भागों में फैले हुए थे।

पाण्डव ऐसे प्रदेश से बिलकुल अनभिज्ञ थे। उनको कहाँ जाना है, इसका उन्हें ज्ञान न था; न घने जंगलों के रास्तों की ही उन्हें कोई जानकारी थी। इन घने जंगलों में कहीं तो बड़े-बड़े गड्ढे थे और कहीं बड़ी-बड़ी टेकरियाँ; कहीं बिलकुल उजाड़ वीरान जगह, तो कहीं सूर्य की किरनों का भी प्रवेश न हो सके ऐसी घनी झाड़ियाँ; कहीं फूलों की सुगंध, तो कहीं बड़े-बड़े काँटे; कहीं मनोहर घास और उसपर चरनेवाले हरिण थे, तो कहीं बड़े-बड़े पेड़ों से अजगर लिपटे हुए पड़े थे।

चलने में सबसे आगे भीमसेन था; उसके पीछे युधिष्ठिर और कुन्ती; उनके पीछे नकुल और सहदेव की जोड़ी; और सबसे पीछे अर्जुन। रास्ता भूल जायें, काँटे और झाड़ियाँ रास्ते में

आड़े आयें; पेड़ों की दीवार-सी सामने आजायें, पैर में खरोंच लग जाय, पेड़ों की दीवारों को तोड़कर रास्ता बनाते-बनाते भीम की जाँघें एकदम लाल-सुर्ख़ हो जायें, वह थककर चूर हो जायें, कभी-कभी तो पीने को पानी न मिलने से मुँह भी सूख जाये, लेकिन पाण्डव तो बस भीमसेन के पीछे-पीछे चले जाते थे।

"बेटा भीम, तू तो चला ही जा रहा है ! अब तो तेरे पैर दुखने लगे होंगे। देख, तेरी ये जाँघें कैसी होगई हैं ?" कुन्ती बोली।

"माँ, मेरी फिकर मत कर। तू भी तो कभीसे चल रही है। आ, तुझे मैं अपने कन्धे पर बिठा लूँ।" भीम कुन्ती को लेने के लिए रुका।

"मुझे तो नहीं बैठना है। सुरङ्ग में से निकलते समय जो तेरे कन्धे पर बैठी हूँ वह इस जीवन में तो मैं कभी नहीं भूलूँगी। कन्धे पर मैं, कमर पर दोनों तरफ़ दो भाई और दोनों हाथों पर दोनों भाई और फिर तू भी वायु के समान वेग से दौड़ा जा रहा था ! यह मैं भूल नहीं गई हूँ। यह तो मैं तेरी माँ नहीं कोई देनदार निकली, जो कन्धे पर से नीचे न उतर पड़ी !" कुन्ती की आँखों में पानी आगया।

"माँ, तू फ़िजूल रंज करती है। मुझे इस तरह कभी थकावट नहीं होती।" भीम ने कहा।

"तुम्हें थकावट क्यों लगेगी ? हम सब तो ठहरे आदमी; हमें शरीर है और शरीर में ख़ून और मांस है, इसलिए हमें थकावट लगती है। और तू तो पत्थर का बना हुआ है, जिससे तुझे न

तो थकान होती है और न भूख-प्यास ही लगती है। तुझे तो कुछ भी नहीं लगता।" कुन्ती ने जवाब दिया।

"माँ, मेरी बात तो सुन!"

"ले, सुनती हूँ। बोल!"

"थकान-थकान में फ़र्क़ है। जो बात मन को अच्छी न लगती हो फिर भी किसी कारण करनी ही पड़े, उसकी थकान एक तरह की होती है। जो बात मन को अच्छी लगती हो, इतना ही नहीं बल्कि उसे करने से मन की एक तरह की भूख तृप्त होती हो, तो उसको करने में थकावट मालूम पड़ने पर भी मन उसे थकान के रूप में स्वीकार नहीं करता। उलटे जब-तब उसीको करने की इच्छा हुआ करती है।" भीमसेन बोला।

"भीमसेन! तू ऐसी बुद्धिमानों की-सी बातें करना कबसे सीख गया? यह शास्त्र तुझे किसने सिखाया?" युधिष्ठिर बोले।

"पिछले पन्द्रह दिनों से पैरों को शान्ति न मिलने से शास्त्र अपनेआप पैदा नहीं हो जाता?" कुन्ती बोली।

"भाईसाहब! शास्त्र-वास्त्र तो मैं जानता नहीं, लेकिन सच कहता हूँ: जंगलों में भटकना, दस-पाँच आदमियों को पीठ पर लादकर भागना, बड़े-बड़े वृक्षों को जड़-मूल से उखाड़ फेंकना, खड्डे और टेकरियों को लाँघ जाना, जंगल में काली अँधेरी रात साँय-साँय करती हो और शेर गर्जता हो तो भी उसमें से निडर होकर चला जाना, इन सबमें कुछ और ही आनन्द आता है। ऐसे ही प्रसंगों में मुझे जीवन का मज़ा आता है। माँ! सच जानो,

सामने के सुदूर हिमाच्छादित शिखरों की तरफ़ जो नज़र डालता हूँ तो मेरे मन में न जाने क्या-क्या ख़याल उठते हैं और ऐसा लगता है मानों पहाड़ मुझे बुला रहे हैं। और मैं उनकी ओर खिंचा चला जाता हूँ! तुम जब मानसरोवर की और कुवेर के गंधर्वों की बातें किया करती हो, तब मेरा मन छटपटाता रहता है; और मैं कब वहाँ जाऊँगा यही विचार मन में आते रहते हैं। इन जंगलों में कहीं मदोन्मत्त हाथी मिलें तो कितना अच्छा हो! मेरा मन उनको पाने के लिए ही डोलता रहता है। रात के समय जब तुम सब लोग सो जाते हो तब मैं जग जाता हूँ, और ख़याल किया करता हूँ कि कोई भयंकर राक्षस आजाय तो कैसा अच्छा हो! तुम लोगों को जो दुःख मालूम देता है वही मेरे मन के आनन्द की चीज़ है; और ऐसे मौक़ों से खाली, सादा, सरल जीवन मुझे बिलकुल सूखा ही लगता है। इसलिए माँ, मेरी थकान का विचार मत करो।" भीमसेन दोनों को मात कर दिया हो इस तरह हँस पड़ा।

"भीमसेन! तुम्हारी बात तो बिलकुल ठीक है। लेकिन माँ अब ख़ूब थक गई हैं, और नकुल-सहदेव भी पीछे रह गये हैं, इसलिए हम लोग यहीं कुछ देर आराम कर लें तो ठीक होगा।" युधिष्ठिर बोले।

"बेटा, मुझे प्यास लगी है; तू थोड़ा पानी तो ले आ।" कुन्ती बोली।

"माँ, इस पेड़ के नीचे बैठो। यहाँ सारस बोल रहे हैं, इस-

लिए नज़दीक ही कहीं जलाशय होना चाहिए। मुझे पानी लेकर आया ही समझो।"

इतना कहकर भीम पानी लेने चला गया और चारों भाई और माता कुन्ती पेड़ के नीचे आराम करने के लिए ठहर गये।

× × × ×

जिस वन में पाण्डव विश्राम करने बैठे, वह हिडिंबा नाम की राक्षसी का था। उस वन के पास ही एक दूसरा वन उसके भाई हिडिंब का था। जिस समय पाण्डव पेड़ के नीचे सुस्ताने बैठे, हिडिंब दूर के एक पेड़ पर से उनको देख रहा था। इस तरह अपने हाथ में इतने पास मनुष्य के आजाने से वह बहुत प्रसन्न हुआ और हिडिंबा से कहने लगा, "बहन, तू जा और उस पेड़ के नीचे कौन बैठे हैं इसकी ख़बर ले आ। मुझे वहाँ मनुष्य की गन्ध आती है और मेरे मुँह में पानी आरहा है। आज कितने दिनों से मुझे मनुष्य का खून और मांस नहीं मिला; इसलिए आज हम खूब पेट भर के खावेंगे। तू जा और पता लगाकर जल्दी वापस आ।"

इधर भीमसेन सरोवर के पास गया; वहाँ जाकर पानी पिया, पानी में उतरकर खूब नहा-धोकर अपनी थकान मिटाई और दूसरों के लिए पानी लेकर वापस चला। लेकिन आकर क्या देखता है कि माँ और चारों भाई गहरी नींद में सो रहे हैं। भीम ने पानी को ढककर रख दिया और माँ और भाइयों की रखवाली के लिए बैठ गया।

इतने ही में थोड़ी दूर पर हिडिंबा दिखाई दी। हिडिंबा ने दूर से भीमसेन को देखा और देखते ही उसपर आसक्त होगई। भीमसेन का वज्र जैसा शरीर, हाथी के सूँड जैसे हाथ, उसकी विशाल छाती, बड़े-बड़े पेड़ों को उखाड़ देनेवाली उसकी जाँघें, आँखों का नूर और उसके सारे शरीर में से निखरता हुआ नव-यौवन—इस सबने हिडिंबा जैसी स्त्री को मोह लिया। हिडिंबा के शरीर पर मानो वसन्तऋृतु का असर होगया। उसके अव-यवों में, उसकी आँखों में, उसके मुँह पर, उसकी वाणी में, उसके हाव-भाव में निखरती हुई जवानी स्पष्ट दिखाई दे रही थी। युवती के अनुरूप अपना वेश बनाकर और कपड़े पहनकर हिडिंबा आगे आई और बोली—"ओ अजनबी आदमी! मैं तुमको पहचानती तो नहीं, लेकिन तुमको देखते ही मेरे सारे शरीर में एक अजीब तरह का परिवर्तन मालूम होरहा है। मेरा सारा शरीर और मन तुम्हारी ओर बड़ी तेज़ी के साथ खिंचा चला जारहा है और न जाने क्यों मैं परवश-सी बनी जारही हूँ। अतः तुम कृपा करके मुझे स्वीकार करो। मैं इस बन की मालकिन हूँ, तुमको मैं राक्षसों के त्रास से बचालूँगी। मेरी इस याचना को तुम ज़रूर स्वीकार करो।"

यह कहते हुए हिडिंबा ने भीम की तरफ़ कनखियों से देखा। भीम को कुछ ऐसा रोमांच हो आया जैसा पहले उसने कभी अनुभव नहीं किया था। थोड़ी देर भीम अपनेको भूल गया। कुछ देर बाद स्वस्थ होकर उसने हिडिंबा की नज़र-से-नज़र मिलाई और कुछ कहना ही चाहता था, इतने में हिडिंबा के पीछे हिडिंब दिखाई दिया।

"दुष्ट हिडिंबा ! मैंने तुझे इन लोगों का पता लगाने के लिए भेजा था या रूपवती बनकर इस मोटल्ले के साथ बातें करने के लिए ? तूने आज हमारे राक्षस-कुल की लाज लुटाई है। ऐसे आर्य तो हम राक्षसों का भोजन होते हैं। अब तू सामने से हट जा, मैं इन लोगों को देख लेता हूँ। अरे ओ मोटल्ले ! चल खड़ा हो। काल ने मालूम होता है तुझे मेरे लिए ही पैदा किया है। इस बुढ़िया को जगाकर इससे मिलले। फिर तो ये लोग भी मेरे ही पेट में पड़नेवाले हैं, इसमें कोई शक नहीं।" इस तरह कहते हुए हिडिंब ने अपने सिर के लाल बालों को ज़ोर से हिलाया और अपनी पीली आँखों से भीम की ओर देखा।

"दुष्ट राक्षस ! तुझे अगर अपनी जान प्यारी हो, तो दूर भाग जा। यह दूसरी बात है कि तूने आजतक कई आर्यों को हज़म कर लिया होगा, लेकिन यह जान लेना कि इस भीम को हज़म करना मुश्किल है। हिडिंबा ! अगर अपने पिता के वंश को क़ायम रखना हो, तो अपने इस भाई को समझा ले। नहीं तो मुझे इसका काल दिखाई दे रहा है।" भीम ललकार कर खड़ा होगया।

हिडिंबा अपने भाई के कन्धे पर हाथ रखकर उसे समझाने लगीः–"भाई ! तू गुस्से मत हो ! तू मेरा सगा भाई है। यह पुरुष मेरे अन्तर का स्वामी बन चुका है। कुल-परम्परागत ख़ून के सम्बन्ध का बन्धन ऐसे अन्तर के सम्बन्ध के सामने किस प्रकार टूट जाता है, यह तू नहीं जानता। भाई ! मैं तेरे पैरों पड़कर प्रार्थना करती हूँ कि तू इस पुरुष को छोड़दे—मेरे अच्छे स्वामी ! आपने मुझे परवश

बना लिया है, फिर भी मुझे आपसे कुछ कहने का अधिकार हो, तो मैं आपसे यही चाहती हूँ कि आप मेरे इस भाई को मारें नहीं ।" हिडिंबा ने कहा ।

"लेकिन यह तेरा भाई तो अपनेआप ही अपनी मौत बुला रहा है, तब मैं क्या करूँ ? मैं उसे कहाँ बुलाने गया था ?" भीम ने जवाब दिया ।

"दुष्टा ! मुझे नहीं पता था कि तेरी वासना तुझे इतना मूर्ख और निर्लज्ज बना देगी । अगर मुझे ऐसी ख़बर होती, तो पहले मैं तुझीको ख़तम करता और तब यहाँ आता । अब सामने से हट जा । पहले इस तेरे अन्तर के स्वामी को ख़तम करता हूँ, उसके बाद तुझे देख लूँगा ।"

"भैया ! मेरी इतनी-सी बात नहीं मानोगे ? मेरा कोई अधिकार नहीं ?" हिडिंबा गिड़गिड़ाने लगी ।

"दूर हट कलमुँही ! मैं तेरा भाई नहीं हूँ । हिडिंब की बहन ऐसी बेशर्म नहीं हो सकती ।" इतना कहकर हिडिंब ने बहन को ज़ोरसे धकेल दिया ।

और भीम और हिडिंब का युद्ध शुरू हुआ ।

युद्ध की तड़ाक-फड़ाक की आवाज़ होरही थी । पेड़ एक के बाद एक टूटते जारहे थे । दोनों एक-दूसरे पर ज़ोरों से घूँसों के प्रहार करते थे । युद्ध के जोश में दोनों ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते जाते थे । दोनों वीर नीचे-ऊपर गिरते-पड़ते, लोट लगाते, जाँघ से जाँघ रगड़ते और दोनों की छाती-से-छाती टकराती थी । इतने

में अर्जुन जग गया और देखता है कि थोड़ी-ही दूर पर हिडिंब के साथ भीम युद्ध कर रहा है।

अर्जुन ने सबको जगाया। यह देखकर सबको चिन्ता होने लगी। इधर शाम होने का समय भी आगया था, इसलिए युधिष्ठिर ने सोचा: "शाम होने से पहले यह राक्षस ख़तम होजाना चाहिये, नहीं तो शाम के बाद राक्षसों का ज़ोर बढ़ जाने से भीम को कठिनाई होगी।"

अर्जुन आगे बढ़कर बोला, "भीम भाई! तुम थक गये होगे। लो, मैं आया।"

"नहीं, अर्जुन! तेरी कोई ज़रूरत नहीं। मैं अकेला ही काफ़ी हूँ।"

इतना कहते ही भीम ने हिडिंब को पृथ्वी पर देमारा और उसकी कमर पर पैर रखकर शरीर के एकदम दो टुकड़े कर दिये। हिडिंब चीख़ मारकर मर गया और सारे जंगल में सूनसान होगया।

हिडिंब को मारकर पाण्डव अपने रास्ते चलने लगे। हिडिंबा भी उनके पीछे-पीछे चलदी। थोड़ी दूर जाने के बाद भी किसीने उसकी ओर नहीं देखा, तब हिडिंबा ही बोली, "माताजी! मैं आपके पीछे-पीछे चली आ रही हूँ, यह आपको मालूम है न?"

"कौन कहता है कि तुम चली आओ? तुम अपने बन में ही रहो न? मेरे बेटे को कितना पिटवाया, यह नहीं कहती!" कुन्ती धमका रही हों ऐसे बोली।

"तुम भी मुझे ऐसा कहोगी ! मैं तुम्हारे कहने से नहीं आ रही हूँ, बल्कि किसी धक्के के वश खिंची चली आ रही हूँ। तुम्हारे इस पुत्र ने मुझे अपने वश में कर लिया है। मैं अपने मन से उनको वर चुकी हूँ।"

"ओ चुड़ैल ! वर भी चुकी ? अरे ओ भीम ! यह क्या कहती है ?" कुन्ती आश्चर्य से बोली।

"माताजी, आप भी मेरे जैसी स्त्री हैं, इसलिए सब समझ सकती हैं। जवानी में यह धक्का लगने पर मनुष्य कैसा दीन और निर्लज्ज बन जाता है, उसका तुमको किसी समय तो अनुभव हुआ ही होगा। इसलिए मेरी बात मानो और ऐसा करो जिससे तुम्हारा यह पुत्र मुझे स्वीकार करले। तुम जो कहोगी वह मदद मैं करूँगी, राक्षसों से तुमको बचाऊँगी, जहाँ जाना होगा वहाँ मैं सबको लेजाऊँगी और अपनी सारी मिल्कियत तुम्हारे पैरों पर रख दूँगी।" हिडिंबा ने कहा।

"युधिष्ठिर ! बताओ अब मैं क्या करूँ ?" कुन्ती ने पूछा।

"मुझे ऐसा लगता है कि यह राक्षसी कामातुर है। दूसरे इस समय हमारा सहायक कोई नहीं है, इसलिए ऐसे राक्षसों के साथ भी सम्बन्ध क़ायम होजाय तो समय पड़ने पर काम ही आयगा।"

"लेकिन," तुरन्त ही कुन्ती बोली, "भीम जैसे बेटे को इस तरह राक्षसी के साथ ब्याह दूँ तो मैं तो कहीं की न रही।"

यह सुनकर हिडिंबा बीच में ही बोल उठी, "माताजी ! ऐसा

न मानो। हम राक्षस लोग आर्य लोगों की तरह ज़िन्दगी-भर के लिए ब्याह करते हों ऐसी बात नहीं है। हमारे शास्त्रकारों ने कहा है कि स्त्री को सन्तान की वासना होना स्वाभाविक है, इसलिए एक सन्तान होजाय तबतक विवाह-सम्बन्ध रखकर बाद में वे अलग हो सकते हैं। मैं भी ऐसे ही विवाह की भूखी हूँ। हमारा इस प्रकार का विवाह पूरा होजाने के बाद मैं तुम्हारे पुत्र को तुम्हारे पास सुरक्षित पहुँचा दूँगी।"

"क्यों भीम, तेरा क्या विचार है ?" कुन्ती ने पूछा।

"मुझे इसकी पागलों की-सी व्यर्थ बातों और इसके शास्त्रों की बात तो कुछ समझ में नहीं आती। लेकिन अगर इसके साथ रहूँ तो जङ्गलों में भटकने, विमानों में उड़ने, पहाड़ों की चोटी पर पहुँचने, समुद्र के ठेठ तले में डुबकियाँ लगाने, उत्तर ध्रुव से ठेठ दक्षिण ध्रुव जाने, ज्वालामुखियों के मुँह में हाथ डालने, और सामान्य पुरुष कल्पना भी नहीं कर सकते ऐसे पृथ्वी के गर्भभागों में प्रवेश करने आदि का ख़ूब मौक़ा मिलेगा। इस बात का ख़याल आने पर थोड़ी देर के लिए मन होजाता है कि इस मौक़े को न छोड़ूँ। लेकिन तुम्हें इस घोर जंगल में अकेले छोड़कर भीम कैसे जासकता है ?" भीमसेन ने जवाब दिया।

"माँ ! भीम को जाने दो। वह चाहे तो हिडिंबा के साथ विवाह करले। देख हिडिंबा ! तू रोज़ दिन में भीमसेन के साथ रहना और शाम के पहले हम जहाँ हों वहाँ हमारे पास उसे पहुँचा दिया करना। राक्षसों पर विश्वास तो नहीं किया जासकता,

लेकिन तुझपर विश्वास रखकर मैं यह कहता हूँ। जाओ, तुम्हारा कल्याण हो !" युधिष्ठिर ने आशीर्वाद दिया।

हिडिंबा कुन्ती और युधिष्ठिर के पैरों पर पड़ी और बोली, "प्रभु आपका भला करे ! माताजी, आपको प्रणाम करती हूँ। आपने मुझपर विश्वास रखकर मुझे आभारी बना लिया है। इस उपकार का बदला चुकाना मैं कभी नहीं भूलूँगी।"

"अखण्ड सौभाग्यवती हो ! मेरे भीम-जैसे पुत्र की माँ होना। भीम ! ईश्वर तुम्हारा भला करे।" कुन्ती गदगद होगई।

"तो माँ ! भीम भाई जायेंगे ?" नकुल बोला।

"आज जायगा तो कल आजायगा। तुम समझना कि वह शिकार करने गया है।" कुन्ती ने जवाब दिया।

कुन्ती और उसके चारों पुत्र आगे चले। जबतक सब दिखाई देते रहे तबतक भीम वहीं खड़ा रहा। बाद में जब वे आँखों से ओझल होगये तब बन की रानी के साथ उसके महल की तरफ़ चला।

: ३ :

बकासुर का वध

"हाय मेरे बेटे ! मैं तुम सबको कैसे छोड़ सकूँगा ?"

कुन्ती और भीमसेन एकचक्रानगरी में एक ब्राह्मण के घर दालान में बैठे हुये थे, वहाँ उन्हें यह आवाज़ सुनाई दी।

"माँ ! यह किसकी आवाज़ होगी ?" भीम ने पूछा।

"आवाज़ तो ब्राह्मण की-सी लगती है। जा ज़रा जाकर देख तो, क्या बात है ? मैं भी यह आई !" कुन्ती बोली।

भीम और कुन्ती गये तो वहाँ ब्राह्मण और ब्राह्मणी दोनों सिर पर हाथ रखकर रो रहे थे। उनका लड़का ब्राह्मणी की गोद में बैठा हुआ होठ हिला रहा था और लड़की दूर कोने में खड़ी आँसू बहा रही थी।

ब्राह्मण रो पड़ा—"हाय मेरे बेटे ! मैं तुम सबको कैसे छोड़ सकूँगा ?"

"अरे भाई !" कुन्ती ने ब्राह्मण के सिर पर हाथ रखकर पूछा, "यों क्यों रोरहे हो ? तुम्हें हो क्या गया है, यह तो बताओ।"

"हुआ क्या, बहन ! मुझ अभागे की तक़दीर फूट गई।" ब्राह्मण ने सिर पीटते हुए कहा, "मैं इससे कहता था कि चलो इस एकचक्रानगरी को छोड़कर हम किसी दूसरे राज्य में रहने चले जाय; लेकिन यह नहीं मानी। टस-से-मस नहीं हुई। 'मैंने इसी

नगर में ही जन्म लिया है और बड़ी भी यहीं हुई हूँ। मेरे सगे-सम्बन्धी भी यहीं रहते हैं। इसलिए मुझे दूसरे गाँव में जाना अच्छा नहीं लगता।' यह कहकर घर से नहीं निकली। अब नतीजा सामने है। तेरी माँ भी मर गई, बाप भी मर गया, तू भी बूढ़ी हो गई और अब आज मेरे भी मौत के मुँह में जाने की बारी आगई है।" ब्राह्मण की आँखों में से आँसुओं की धारा बह रही थी।

"लेकिन," कुन्ती ने कहा, "तुम ज़रा शान्त होकर अपनी बात तो समझाकर कहो!"

"उस बात को समझकर भी क्या होगा? यह दुःख ऐसा थोड़े ही है जिसमें कोई हिस्सा बँटाले।" ब्राह्मण ने जवाब दिया।

"लेकिन अपनी बात तो सुनाओ। बेटी, इधर आओ! कोने में क्यों खड़ी हो?" कुन्ती ने लड़की को पुचकारकर अपने पास बुलाया।

"बहन! तुम नई-नई हो, इसलिए लो मैं तुम्हें बतलाये देता हूँ। भाई, तुम भी बैठ जाओ। इस एकचक्रानगरी के बाहर दूर एक बड़ा बन है, उसमें बक नाम का एक राक्षस रहता है।" ब्राह्मण बोला।

"क्या नाम बताया? बक?" भीम ने पूछा।

"हाँ, बक। लोग उसे बकासुर कहते हैं।" ब्राह्मण ने जवाब दिया।

"उस बक के बारे में क्या बात है?" कुन्ती बोली।

"वह बकासुर इस एकचक्रानगरी की रखवाली करता है।"

ब्राह्मण ने अपनी बात जारी रक्खी, "एकचक्रा के ऊपर कोई दुश्मन चढ़ाई न करे, या कोई जंगली शेर या सिंह वग़ैरा तकलीफ़ न दे, यह देखने की सारी ज़िम्मेदारी बकासुर के ऊपर है।"

"तो बकासुर ज़बरदस्त मालूम पड़ता है।" भीम बोला।

"वह अकेला ही बड़ा ज़बरदस्त है। इसपर वह यहाँ अपनी फ़ौज के साथ रहता है, इसलिए उसका क्या पूछना ?" ब्राह्मण बोला।

"जब यह सारा भार बकासुर के सिर पर है, तो फिर वह तो एक तरह से तुम्हारा राजा है, यह कहो न ?" कुन्ती बोली।

"नहीं, नहीं। हमारा राजा तो दूसरा है। वह यहाँ से थोड़ी दूर पर नेत्रकीय गृह में रहता है। लेकिन राजा में दम हो तब न ? वह तो राजगद्दी पर एक प्रकार से पुतले के समान हैं।" ब्राह्मण ने समझाया।

"माँ ! राजा तो बकासुर ही बन बैठा होगा। किसी पराक्रम की ख़ातिर सबकी रखवाली थोड़े ही करता होगा ?" भीम बोला।

"हाँ, भाई ! तुम समझ गये। परोपकार का तो नाम है, दर-असल तो यह पेट-उपकार है।"

"बकासुर जो हमारी सब लोगों की रखवाली करता है उसके बदले में एकचक्रा नगरी के लोगों को हमेशा आहार के लिए एक गाड़ी अनाज, दो भैंसे और एक मनुष्य देना पड़ता है।" ब्राह्मण बोला।

"रोज़ ? हमेशा ?" भीमसेन ने पूछा।

"हाँ, रोज़। जैसे सूर्य का उगना निश्चित है वैसे ही यह रसद भेजना भी निश्चित ही है।"

"इस एकचक्रा में कितने घर हैं ?" भीम ने पूछा।

"होंगे कोई सात-आठ हज़ार। हरेक घर की पन्द्रह-बीस बरस में एक बार बारी आती है। लेकिन जब बारी आती है तब होश फ़ाख़्ता होजाते हैं।" ब्राह्मण ने कहा।

"तो मालूम होता है आज तुम्हारी बारी है ?" कुन्ती ने पूछा।

"हाँ, कल मेरी ही बारी है।" ब्राह्मण ने कहा।

"लेकिन मान लो कि अपनी बारी हो और उसका पालन न करें, तो ?" भीम ने सवाल किया।

"अगर कोई अपनी बारी पर न जाय, तो बकासुर और उसके आदमी आकर उसके घर को बरबाद कर डालते हैं और चाहें जितने आदमियों को उठाकर ले जाते हैं।" ब्राह्मण ने कहा।

"अपनी जगह किसी दूसरे आदमी को कोई बकासुर के पास धकेल दे, तो ?" भीम ने पूछा।

"घर में से एक आदमी को जाना चाहिए। चाहे जो चला जाय। अपने बदले किसी आदमी को ख़रीदकर भी भेज सकते हैं।" ब्राह्मण ने जवाब दिया।

"ऐसा है ?" भीम ने आश्चर्य से पूछा। "तो क्या एकचक्रा के बाज़ार में मरने के लिए आदमी ख़रीदे जा सकते हैं ?"

"ज़रूर। मेरे पास धन नहीं है, नहीं तो मैं भी किसीको ख़रीद-कर भेजदूँ और फिर मुझे कोई झंझट न हो।" ब्राह्मण ने बताया।

"भाई ! यह बकासुर तुम्हारी रखवाली करे, इसके बदले तुम खुद ही अपनी रक्षा क्यों नहीं कर लेते ?" भीम ने पूछा।

"इतनी शक्ति हमारे राजा में भी नहीं है, और न हममें ही है। हमारे गाँव में एकता तो बिलकुल नहीं है, जैसा कि कुछ दिन यहाँ रहने पर—तुम्हें अपनेआप मालूम होजायगा।" ब्राह्मणने कहा।

"तो फिर तुम लोग बकासुर को इस प्रकार कबतक खाना देते रहोगे?"

"पिछले चालीस बरसों से देते आरहे हैं। इसलिए अब तो सब आदी ही बन गये हैं और जिसका नम्बर होता है उसके सिवा औरों को इसके त्रास का ख़याल भी नहीं होता।" ब्राह्मण ने कहा।

"तुम लोगों की तादाद तो तीस-पैंतीस हज़ार है, फिर भी एक बकासुर के त्रास को दूर नहीं कर सकते! तुम अगर ठानलो तो अपनी रक्षा ख़ुद ही कर सकते हो और बकासुर को बतादो कि अब तुम्हारे संरक्षण की हमें ज़रूरत नहीं है।" भीम बोला।

"हम ख़ुद अपनी रक्षा कैसे कर सकते हैं, यह तो हमारी समझ में ही नहीं आता! बकासुर न हो, तब तो दूसरे दुश्मन हमें मार ही न डालें?" ब्राह्मण ने कहा।

"अरे भले आदमी, तुम तो बहुत डरपोक मालूम होते हो। लेकिन यह तो बताओ कि जहाँ बकासुर न हो वहाँ के लोग कैसे जीते होंगे?" भीम बोला।

"लेकिन मानलो कि हम बकासुर को कहलादें कि अब उसके संरक्षण की हमें कोई ज़रूरत नहीं है, तो क्या बकासुर सीधी तरह हमारी बात मान लेगा?" ब्राह्मण ने कहा।

"नहीं क्यों मानेगा ? अगर न माने तो तुम अनाज, भैंसे और मनुष्य उसके पास भेजना बन्द करदो।" भीम ने कहा।

"ऐसा करने पर तो बस एकचक्रानगरी का ख़ातमा ही समझो।" ब्राह्मण बोला।

"भाई ! सारे गाँव ने कभी ऐसा कुछ करके देखा भी है ?" कुन्ती ने पूछा।

"सारे गाँव का इकट्ठा होना तो सपने में भी संभव नहीं है। लेकिन मुझे याद आता है कि जब मैं छोटा था तब एक योगी ने गाँववालों से कुछ कहा ज़रूर था।" ब्राह्मण कुछ याद करता हुआ-सा बोला।

"योगी ने गाँव के सारे लोगों को इकट्ठा करके कहा था कि तुममें से किसी बत्तीस लक्षणवाले आदमी को खोजकर बकासुर के पास भेजो।" ब्राह्मण बोला।

"हाँ, फिर ?" भीम ने पूछा।

"फिर गाँव के अगुओं ने इकट्ठे होकर यह निश्चय किया कि 'महाराज, हमारे यहाँ तो आप ही बत्तीस लक्षणवाले हैं। आपसे बढ़कर हमारे गाँव में तो और कोई आदमी है नहीं।' ब्राह्मण ने बताया।

"फिर क्या हुआ ?" कुन्ती ने पूछा।

"फिर योगी महाराज गये और बकासुर उन्हें खाने लगा। लेकिन वह तो बकासुर के गले में फँस गये। न अन्दर ही जाते थे और न बाहर ही निकलते थे।" ब्राह्मण ने कहा।

"तब तो बड़ा मज़ा हुआ होगा !" भीम बोला।

"थोड़ी देर के लिए सबको ऐसा मालूम होने लगा कि बकासुर अभी क़ै करके मर जायगा।" ब्राह्मण ने बात को जारी रखते हुए कहा, "लेकिन इतने में तो बकासुर के आदमियों ने अगुओं को इकट्ठा किया और उनपर ऐसा ज़ोर डाला कि सबने योगी महाराज की आरज़ू-मिन्नत करके उन्हें बाहर निकाल लिया और बकासुर के लिए भोजन वग़ैरा की पहले-जैसी बारी बाँध दी गई। उस समय मैं बालक था। लेकिन मेरी माँ और पिताजी यह बात अक्सर हमसे कहा करते थे।" ब्राह्मण ने अपनी बात पूरी की।

"तब तो तुम्हें अपनी बारी का यह काम करना ही पड़ेगा, क्यों ?" भीम ने पूछा।

"हाँ, यह तो करना ही पड़ेगा। अभीतक हमारी बारी नहीं आई थी, इसलिए किसकी बारी आई और किस माता ने अपने पुत्र को बकासुर को समर्पण किया इसका विचार ही हम नहीं करते थे। आज हमारी बारी है, इसलिए हममें से जो एक आदमी जायगा उसके लिए रो-पीट लेंगे और हताश होकर बैठ जायँगे। बरस-छः महीने बाद फिर भूल जायँगे। सारी एकचक्रानगरी की यही मनोदशा है।" ब्राह्मण बोला।

"क्या आज तुम्हारी इस एकचक्रानगरी में ऐसा एक भी आदमी नहीं है, जो तबतक सुख से नींद न ले जबतक कि बकासुर का यह त्रास दूर न हो जाय ?" भीम ने पूछा।

"मुझे तो ऐसा कोई नहीं मालूम पड़ता।"

"पैंतीस हज़ार की बस्ती में एक भी ऐसा नहीं, जिसके हृदय में बकासुर के त्रास से छुटकारा पाने की आग निरन्तर जला करती हो और जबतक वह शान्त न हो तबतक उसे चैन न मिले?" भीम ने फिर से पूछा।"

"नहीं।"

"अरे भाई! तुम क्या कहते हो? इस असुर का यहाँ इतना आतंक छाया हुआ है कि किसी का दिमाग़ भी गरम नहीं होता? किसी आदमी की आँख फूट नहीं जाती? किसीके हाथ में खुजली नहीं चलती? किसी का हृदय बेचैन नहीं होता?" भीम का ख़ून उबलने लगा।

"भाई, तुम जो-कुछ पूछते हो वह सब मैं समझ गया। जो बात तुम पूछते हो, वह इस एकचक्रानगरी में नहीं है। हम सब मानव-देहधारी मिट्टी के पुतले बन गये हैं। कोई महापुरुष आगे आकर हमारे अन्दर प्राण फूके तभी कुछ हो तो हो। आज तो हम जैसे बने वैसी अपनी ज़िन्दगी के दिन काटनेवाले पामर मनुष्य हो गये हैं।" ब्राह्मण ने अपनी दीनता बताई।

"तब तो यही कहो न कि तुम लोग बकासुर को मारना ही नहीं चाहते!" कुन्ती बोली।

"मारना तो है ही; लेकिन किसी मनुष्य के किये यह काम होगा, ऐसा हमें नहीं लगता। ईश्वर करे कि किसी प्रकार इस राक्षस की मौत होजाय, तो हम प्रभु का बड़ा उपकार मानेंगे।" ब्राह्मण ने कहा।

"तो भाई, अब रोते क्यों हो ? कल किसी एक को तो जाना ही है।" कुन्ती बोली।

"हममें से पहले कौन जाय, यही तो सवाल है।" ब्राह्मण ने कहा।

तुरन्त ही ब्राह्मणी बोल उठी, "मैं तो कहती हूँ कि मुझे जाने दो। तुम दोनों बच्चों को पीछे से सम्हाल लेना।"

"लेकिन तुझे भेजकर मुझसे जिन्दा रहा जायगा ?" ब्राह्मण बोला।

"पिताजी !" कुन्ती के पास खड़ी हुई ब्राह्मण की लड़की बोली, "मुझे ही भेज दो न ! मैं यों भी तो पराये घर जाने वाली हूँ। फिर दो दिन पहले या दो दिन बाद। यहाँ से तो जाना ही है।"

"मैं तो बहुत चक्कर में पड़ गया हूँ। तुम सबको खोकर मैं पीछे ज़िन्दा रहना नहीं चाहता; इसी तरह खुद मरकर तुम लोगों को दुःख में भी नहीं डालना चाहता।" ब्राह्मण दीन होकर बोला।

इस प्रकार बातचीत चल ही रही थी कि इसी बीच कुन्ती और भीम थोड़ी देर के लिए अपने कमरे में गये और जल्दी ही वापस आ गये।

"कहो भाई ! तो फिर क्या निश्चय किया ?" कुन्ती ने पूछा।

"अभी इनकी तबीयत तो ठीक हुई नहीं। तो फिर तय भी कैसे हो ?" ब्राह्मणी बोली।

"तो भाई, मेरी एक बात सुनोगे ? कल तुममें से कोई भी न जाय। मेरे पाँच लड़के हैं, इसलिए तुम्हारी बारी में

मेरा यह लड़का चला जायगा।" कुन्ती ने अपनी तजवीज़ रक्खी।

"अरे, यह क्या कह रही हो? किसीके हाथ बड़े हों तो क्या उसकी बाँह बना लेनी चाहिए?" ब्राह्मणी बोली।

"ऐसी बात नहीं है। हम निराश्रितों को तुमने अपने घर आश्रय दिया है, उस उपकार का बदला मैं और किस तरह चुकाऊँगी? फिर मेरे लड़के ने कितने ही राक्षसों को देखा है, कई को तो मार भी डाला है। उसका शरीर भी मज़बूत है। तुम जानते हो कि रोज़ भिक्षा में से आधा हिस्सा इसका होता है और बाकी के आधे हिस्से में हम पाँचों अपना काम चलाते हैं। इसलिए कल इसे ही जाने दो। यह ज़रूर बकासुर को मार डालेगा।" कुन्ती ने आग्रहपूर्वक कहा।

"हम तो बच जायें और तुम्हारे पुत्र को राक्षस से भिड़ादें, यह हमारे लिए कितनी बुरी बात है?" ब्राह्मण ने कहा।

"परन्तु यह सब तो मैं अपनेआप ही तुमसे कह रही हूँ।" कुन्ती बोली। "क्यों बेटा, ठीक है न?" उसने भीम से पूछा।

"माँ, मैंने तो जबसे यह बात सुनी है तभीसे मेरे रोंगटे खड़े हो रहे हैं। मेरे हाथों में खुजली चलने लगी है। मेरी आँखें बकासुर को देखने के लिए छटपटा रही हैं। जिस गाँव में हम रहें वहाँ बकासुर का ज़ुल्म जारी रहे और हम लोग बैठे रहें, यह हमें कैसे शोभा दे सकता है? अतः कल तो मैं ही जाऊँगा।" भीम ने अजीब उत्तर दिया।

"जैसी तुम लोगों की इच्छा हो।" ब्राह्मण अपने आँसू पोंछते हुए बोला, "तो मैं निरुपाय हूँ। भाई, तुम खुशी से कल जा सकते हो। लेकिन देखना, समय पर अगर नहीं पहुँचे तो बकासुर सीधा यहीं आकर हम सब लोगों का ख़ात्मा कर देगा। तुमने अभी उसका क्रोध देखा नहीं है। वह जब अपनी आँखें निकालता है, तब ऐसे-वैसे का तो दम ही निकल जाता है।" ब्राह्मण बोला।

"ठीक! वक्त पर ही जाऊँगा। अब तुम उसकी फ़िक्र न करो।" भीम ने कहा।

माँ-बेटे अपने कमरे में चले गये।

× × ×

सवेरे भीम दो भैंसों की गाड़ी में अनाज भरकर जल्दी ही शहर से बाहर निकल गया, और बकासुर के वन के पास जाकर ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगा। भीम की ज़ोर की चिल्लाहट सुनकर बक बाहर आया और क्या देखता है कि भीम ने गाड़ी में से भैंसों को तो बक के बग़ीचे में चरने के लिए छोड़ दिया है और ख़ुद गाड़ी में रक्खे हुए अनाज में से मुट्ठी भर-भर के फंकी लगाता हुआ मस्ती से इधर-उधर घूम रहा है।

"यह कौन दुष्ट यहाँ घूम रहा है?"

पर भीम क्यों सुनने लगा था?

"अरे ओ बदमाश! जवाब दे; नहीं तो अभी तुझे पीसे डालता हूँ।"

"भीम ने मानों कुछ सुना ही न हो, इस तरह फिर गाड़ी में से

दो मुट्ठी अनाज लिया और फंकी लगाकर घूमने लगा।"

"अरे कम्बख्त ! सुनता नहीं ? क्या इस बकासुर को नहीं जानता ?" बकासुर ज़ोर से चिल्लाया।

भीम ने दोनों मुट्ठी अनाज शान्तिपूर्वक खाया और निश्चिन्ताई से पानी पिया।

इतने में बकासुर ने पीछे से आकर भीम की पीठ पर दो घूँसे जमाये। भीम ने बकासुर की तरफ़ देखा और दोनों लड़ने को तैयार होगये। बकासुर ने भीम के ऊपर एक के बाद एक पेड़ बरसाने शुरू किये, और भीम एक-एक पेड़ को लेकर तोड़ने लगा। थोड़ी ही देर में भीम ने बक को थकाकर जमीन पर दे मारा और गर्दन दबोचकर मार दिया। मरते समय बकासुर ने ज़ोर से चीख़ें मारी, और उसके मुँह से ख़ून की तीन-चार क़ै हुईं।

बकासुर की आवाज़ सुनकर उसकी सेना के सब राक्षस एकदम दौड़ आये, लेकिन यहाँ देखते हैं तो बकासुर धरती पर मरा पड़ा था।

बकासुर के साथी राक्षसों को देखकर भीम ने उनसे कहा : "देखो, तुम्हारे मालिक का यह हाल हुआ है। तुम भी आगे से कभी इस शहर में किसी आदमी को खाओगे, तो जो हाल इस बक का हुआ है वही तुम्हारा भी होगा, यह समझ लो। इस बन में तुम्हें रहना हो तो खुशी से रहो, लेकिन ये भैंसे और गाड़ी भरके अनाज और आदमी अब तुम लोगों को नहीं मिलेंगे। एकचक्रा के लोग जिस तरह जी-तोड़ मेहनत करके खाते हैं, उसी तरह

तुम भी मेहनत करके खाओ। या तो यह मंजूर करो, नहीं तुम सबका भी बक जैसा ही हाल करता हूँ।"

बक के राक्षस एक-दूसरे की तरफ़ देखने लगे, मरे हुए बक को देखा, बक को मारनेवाले को देखा और अन्त में लाचारी के साथ बोले: "आप जो-कुछ कहते हैं वह हमें मंजूर है।"

"देखो, इस एकचक्रा के लोग जैसे हैं वैसे ही तुम भी हो, उनसे ऊँचे या नीचे बिलकुल नहीं हो।" भीम ने समझाकर कहा।

"मंजूर है।"

"लुक-छिपकर भी आदमियों को मत खाना।"

"मंजूर।"

"जाओ, अपने बन में सुख से रहो। इस बकासुर के शरीर को मैं शहर के दरवाज़े के बीचोंबीच रखनेवाला हूँ, ताकि लोग जान लें कि असुरों का त्रास सचमुच ही दूर होगया। तुम लोगों के त्रास का अन्त लोग अपनी आँखों न देख लें तबतक उनको विश्वास नहीं होगा। उसके बाद फिर अपने मालिक का शव तुम ले जाना चाहो तो भले ही ले जाना।"

बकासुर के ख़ास आदमी ने जवाब दिया, "बकासुर जब खुद ही चले गये, तो फिर उनका निर्जीव शरीर हमारे पास हो या आपके, हमारे लिए यह एकसा है। इस शरीर में नया प्राण आ सकता होता तब तो हम लोग ज़रूर इसको सम्हालते, लेकिन यह तो सम्भव मालूम नहीं होता। ऐसी हालत में राक्षस मात्र के मुर्दे को सम्हाल के रखने की हमें तो कोई इच्छा नहीं है।"

सारे राक्षस अपने बन को लौट गये और भीमसेन एकचक्रा के दरवाज़े पर बकासुर के शव को रखकर चुपचाप घर गया और सारी हक़ीकत अपनी माँ तथा भाइयों को सुनाई।

पाण्डव खुद ही कहीं एकचक्रा में ज़ाहिर न हो जायें और पापी दुर्योधन कहीं उनका पीछा न करे, इस डर से वे एकचक्रानगरी में से चुपचाप चल दिये। द्रुपद राज के यहाँ उनकी लड़की का स्वयंवर था, उसे देखने के लिए पहले वे वहीं के लिए रवाना हुए।

: ४ :

द्यूत-सभा में प्रतिज्ञा

हस्तिनापुर के राजमहल में जुए के दांव पर दांव लग रहे थे। सफ़ेद दाढ़ीवाले भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य वग़ैरा ज़मीन पर निगाह गड़ाये मूर्ति के समान एक ओर बैठे थे; जुए की जीत से उन्मत्त शकुनि, दुर्योधन और कर्ण एक ओर थे; धधकते हुए ज्वालामुखी के समान क्रुद्ध पाण्डव एक ओर थे; हाथी की सूंड के समान बलवान हाथों से वस्त्र को खींचनेवाला दुःशासन और कमल से भी कोमल हाथों से अपने वस्त्र का रक्षण करनेवाली सती द्रौपदी एक ओर थे। और इन सबके बीच पड़े हुए हाथीदाँत के पाँसे कौरव-कुल का भविष्य आँकते हुए ऐसे पड़े थे मानों अभी ज़ोरों का अट्टहास करके थक गये हों।

भीम से न रहा गया: "अर्जुन! युधिष्ठिर ने हमारी सारी धन-दौलत दांव में लगादी, अपने दास-दासियों को दांव में रक्खा, तुझे और मुझे दांव में लगाया, माद्री माता के इन पुत्रों को भी दांव में लगाया और अन्त में खुद अपनेको भी दांव में लगा दिया। यह सब असह्य होते हुए भी सहा जा सकता है। लेकिन युधिष्ठिर ने हमारी पांचाली को दांव में लगाते हुए ज़रा भी संकोच न किया, यह मुझसे नहीं सहा जा सकता। सहदेव! ज़रा कहींसे आग तो ले आ। जिस हाथ से युधिष्ठिर जुआ

खेलते हैं उसी हाथ को मैं जला दूँ।" भीम की आँखें लाल हो गईं और उसकी आवाज़ में भारीपन आगया।

"भाई भीमसेन! शान्त रहो। तुम पहले तो इस तरह नहीं बोलते थे। आज ऐसी बातें क्यों कह रहे हो? युधिष्ठिर हमारे बड़े भाई हैं।" अर्जुन बोला।

"युधिष्ठिर बड़े भाई? जिनको जुआ खेलते हुए शर्म नहीं आई वह बड़े भाई? जो जुए के नशे में अपना सब-कुछ खो बैठे वह बड़े भाई? जुए के दांव में जो अपने छोटे भाइयों को गुलाम बनाये, वह बड़ा भाई? जो अपनी धर्मपत्नी को साधारण चीज़ समझकर उसे भी दांव में लगाते समय ज़रा भी संकोच न करे, वह बड़ा भाई? हमारा बड़ा भाई तो वह जो कुन्ती माँ की कोख का नाम करे; जो स्वाभिमान की रक्षा करे और करना सिखावे; जो हमारे सिरों पर छत्र की तरह रहे और हमें अँधेरे में रास्ता दिखावे! अर्जुन! युधिष्ठिर आज बड़े भाई के रूप में अयोग्य साबित हुए हैं। और जिस हाथ से युधिष्ठिर ने जुआ खेला है उस हाथ को अग्नि भी पवित्र कर सकेगी या नहीं, इसमें मुझे संदेह है।" भीम का क्रोध बढ़ता ही गया।

"भाई भीमसेन! ज़रा शान्त रहो! धीरज रक्खो।"

"शान्त कैसे रहूँ? मैं तो बहुत कोशिश करता हूँ, लेकिन पांचाली की यह चोटी मेरे डंक मार रही है। अर्जुन! कोई भी क्षत्रिय का पुत्र अपनी प्यारी पत्नी की चोटी की ऐसी दशा देखकर कैसे शान्त रह सकता है?" भीम की आँखें लाल हो रही थी।

"भीमसेन ! ज़रा सब्र करो । ईश्वर पांचाली के सहायक हैं ।" अर्जुन ने कहा ।

"अरे, पांचाली तो खुद अपनी रक्षा कर सकती है । लेकिन हमारा भी तो कुछ फ़र्ज़ है न ?"

भीम यह कह ही रहा था, इतने में दुःशासन द्रौपदी का वस्त्र खींचते-खींचते थककर बैठ गया और द्रौपदी ने उपस्थितजनों को लक्ष्य करके कहा—"इस सभा में कुरुकुल के सब बड़े-बूढ़े बैठे हुए हैं । आप लोगों से मैंने जो प्रश्न किया था उसका जवाब अभी तक मुझे नहीं मिला है । ऐ बड़े-बूढ़ो ! मेरे प्रश्न का जवाब दीजिए । आप सब लोग धर्मप्रवीण हैं, इसलिए मेरा समाधान कर दें ।"

द्रौपदी की बात सुनकर भीष्म पितामह जवाब देने के लिए उठ ही रहे थे कि भीमसेन एकाएक उठा और गरजकर बोला—"इस कौरव-सभा में बैठे पुतलो ! बेचारी द्रौपदी यह नहीं जानती कि आप सभी न तो बुज़ुर्ग ही हैं और न यह सभा ही सच्ची सभा है । आप सचमुच ही बुजुर्ग होते तब तो कभीके सत्य को समझकर यह जुआ बन्द कर देते, नहीं सभा को छोड़कर चले जाते । द्रुपद राज की इस पुत्री को क्या मालूम कि आप लोगों का धर्म-ज्ञान ख़ाली पुस्तकों तक ही सीमित है और आप लोग ख़ाली ज़बान चलाना ही जानते हैं । ऐसा धर्म-ज्ञान भला क्षत्रियों के किस काम का ? आपके अन्दर ऐसा क्षत्रिय वीर मुझे कोई नहीं दीखता, जो तलवार की धार से निकलनेवाले खून से शास्त्र लिखता हो । मैं समझता था कि दुःशासन के पांचाली की चोटी

को स्पर्श करते ही आपकी कमर पर लटकती हुई तलवार एक-साथ अपनी म्यानों से निकल पड़ेंगी, लेकिन आज मुझे मालूम पड़ा कि आप लोगों की कमरों पर लटकती हुई तलवारों पर जंग लग गया है और भारतवर्ष में से क्षत्रियत्व का ख़ात्मा हो चुका है। कौरव-सभा के पुतलो ! यह मत समझना कि आज दुःशासन ने केवल पांचाली की ही चोटी खींची है। दुःशासन ने तो आज सारी भारतमाता की चोटी खींची है। जिस चोटी को आर्य स्त्रियाँ हमेशा स्नेह-सिंचन करके सौभाग्य के परमचिन्ह के रूप में पूजती हैं, जिस चोटी में फूलों को गूंथकर आर्य गृहस्थजीवन में रसिकता उत्पन्न करते हैं, जिस चोटी को खोलकर आर्य माता अपने बालक को दूध पिलाती हो तब उस बालक के दर्शन के लिए देवता भी तरसते हैं, उस चोटी का अपमान होना सारे भारत की स्त्रियों का अपमान है। आप सबकी माताओं, पत्नियों, बहनों और स्त्रियों का इसमें अपमान है। आप सब इस अपमान को देखकर भी शान्त होकर बैठे हुए हैं, इसीसे तो मैं कहता हूँ कि दुष्ट की दुष्टता को देखकर ख़ून खौला देनेवाला क्षत्रियत्व आज नहीं रहा !

"लेकिन दुःशासन ! याद रख। यह मत समझना कि भीम तुझे भूल जायगा। आज तो मैं लाचार हूँ। लेकिन एक दिन आवेगा जब मैं तेरी छाती चीरकर उसमें से निकलते हुए गरम ख़ून को पीकर अपनी तृप्ति करूँगा। और एक दिन मैं तुझे यह दिखा दूँगा कि पांचाली की चोटी को अपने जीवन की क़ीमत चुकाकर ही छुआ जा सकता है !"

भीमसेन जोश में आकर बोल रहा था, उस समय अर्जुन बार-बार उसे बैठ जाने का इशारा कर रहा था। लेकिन भीम तो तभी शान्त हुआ जब कि उसके दिल का गुबार निकल गया। भीम के वाक्य भीष्म और द्रोण के कलेजे में तीर की तरह चुभ गये। दुर्योधन और कर्ण तो जब भीम बोल रहा था तभी उसका मज़ाक़ उड़ा रहे थे। आख़िर कर्ण बोला—"यह जितना बोल ले उतना ही अच्छा है। बोलकर अपना ग़ुबार निकाल लेने के बाद यह कुछ नहीं कर सकेगा; इसलिए चाहे जितना बोल ले। मुझे भीम से कोई डर नहीं है। इससे तो कुछ भी न बोलनेवाला अर्जुन मेरे लिए ज़्यादा ख़तरनाक है। हमें अगर सावधान रहना है तो सिर्फ़ अर्जुन से ही।"

उसके बाद भीष्म पितामह ने द्रौपदी के प्रश्नों का यथाशक्ति यथामति जवाब दिया। लेकिन भीष्म का जवाब स्पष्ट और निर्भय न था। उन्होंने जो जवाब दिये वे दुर्योधन और कर्ण के तो अनुकूल थे, पर द्रौपदी के दुःखी दिल को और वेदना ही पहुँचा सकते थे।

कर्ण बोला—"द्रौपदी! अब पाण्डव तेरे पति नहीं रहे; इसलिए अपने लिए कोई दूसरा पति चुन ले।"

कर्ण की बात सुनकर भीम एकदम क्रोध से काँप उठा। इतने में दुर्योधन ने अपनी दाहिनी जाँघ खोली और द्रौपदी को उसपर बैठने का इशारा करता हो इस तरह का अश्लील मज़ाक़ द्रौपदी के साथ किया।

तब तुरन्त ही भीमसेन उबल पड़ा: "अबे ओ अन्धे के लड़के!

पापी दुर्योधन ! द्रौपदी तो इस समय ईश्वर की गोदी में बैठी हुई है। तेरी इन जाँघ पर बैठने के लिए मेरी इस गदा ने ही जन्म लिया है। ओ कौरव-सभा के पुतलो ! मैं भीमसेन आज तुम सबके सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि एक दिन मैं दुर्योधन की इस जाँघ को तोड़ दूँगा, और जो दुर्योधन इस सभा में जुए में जीतकर अपना सिर ऊँचा किये बैठा है उसके सिर पर अपने इस पैर की ठोकर लगाऊँगा। स्वर्ग के देवताओ ! अगर मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी न करूँ तो तुम मुझे घोर नरक में डालना।"

भीमसेन के वचनों को सुनकर सारी सभा में सन्नाटा छा गया। चारों ओर इन शब्दों की मानों प्रतिध्वनि होने लगी और सभा-भवन की दीवारों को छेदकर भीम के वचन ठेठ धृतराष्ट्र और गांधारी तक भी पहुँच गये।

: ५ :

भीमसेन का क्षात्र-धर्म

"अर्जुन ! मैं क्या करूँ ? मैं बहुत कोशिश करती हूँ, लेकिन फिर भी भीमसेन को किसी तरह शान्ति नहीं मिलती। रोज़ आधी-आधी रात तक बिस्तर पर पड़े-पड़े जागते रहते हैं, और कभी-कभी तो नींद में भी रोने लगते हैं।" द्रौपदी बोली।

"लेकिन भीम की ऐसी हालत रही तो वह बीमार पड़ जायगा।" अर्जुन चिन्तित होकर बोला।

"बात तो ठीक है। इस लम्बे बनवास से और महाराज युधिष्ठिर के जब-तब क्षमा का उपदेश देने से उन्हें बड़ी चोट लगी है।" पाञ्चाली बोली।

"यही तो बात है। सिंह को अगर पिंजरे में बन्द करके रक्खो तो वह झुर-झुरकर ही मर जाता है।" अर्जुन ने कहा।

"अर्जुन !" द्रौपदी बोली, "कल रात को भीमसेन नींद में एकदम हड़बड़ाकर उठ बैठे और कहने लगे—'पाञ्चाली ! मेरी गदा तो ले आ। इस दुष्ट की जाँघ को तोड़ डालूँ।' फिर जब जगे, होश आया और मैं दिखाई दी, तो एकाएक रो पड़े।"

"देवी ! उसे अगर कोई शान्त कर सकता है तो केवल तुम ही।" अर्जुन बोला।

"देखो न, वहाँ दूर एक पत्थर पर अपने पैरों के बीच में सिर डाल कर बैठे हैं !" द्रौपदी बोली।

"अब तो बनवास को पूरा महीना भी नहीं रहा। फिर भी भीमसेन को ऐसा क्यों होता है?" अर्जुन परेशानी के साथ सोचने लगा।

दोनों इस प्रकार बातें कर रहे थे कि इतने में भीमसेन वहाँ आगया। उसका पहाड़ जैसा शरीर ढीला पड़ गया था; आँखों में नींद की खुमारी थी; नाक में से गरम साँस निकल रही थी; पैर अस्त-व्यस्त पड़ रहे थे। वह किसी गहरे विचार में पड़ा हो, ऐसा दिखाई देता था।

"क्यों, भाई भीमसेन! तबीयत तो ठीक है न?" अर्जुन ने पूछा।

भीमसेन कोई जवाब दिये बग़ैर उसकी तरफ़ देखने भर लगा।

"भीमसेन! क्यों, बोलते नहीं? तबीयत तो ठीक है न?" द्रौपदी बोली।

"भीमसेन की तबीयत ठीक है या नहीं, इसका विचार मत करो। धर्मराज की तबीयत कैसी है, यह पूछा कि नहीं?" भीम द्रौपदी के सामने देखकर बोला।

"ऐसा उलटा जवाब क्यों देते हो, भाई!" अर्जुन ने कहा।

"अर्जुन! एक माँ के पेट से पैदा हुए भाई अर्जुन! उलटा जवाब न दूँ तो कैसा दूँ? जिसकी जिन्दगी का सारा रस सूख गया है, वह उलटा जवाब न दे तो कैसा दे?" भीमसेन दीन होकर बोला।

"प्यारे भीमसेन! मैं तुम पाँचों भाइयों की धर्मपत्नी हूँ, पर

मेरे हृदय की बातों को पूरा करनेवाले तो तुम एक ही हो। भरी सभा में जब मेरी लाज लुट रही थी, तब मेरी पीड़ा अकेले तुम्हीं-को अनुभव हुई थी। इस बनवास में जयद्रथ ने जब मुझपर कुदृष्टि डाली, तब इन अर्जुन के साथ तुम्हीं जयद्रथ के पीछ दौड़े थे। मैंने जब एक नवोढ़ा स्त्री के समान सोने के कमल की इच्छा की, तब तुमने अपनी जान को खतरे में डालकर भी कुबेर के तालाब में से उसे लाकर ही चैन लिया। इस वन में भी जब मेरा हृदय व्याकुल हो जाता है तब तुम्हीं अकेले मेरे हृदय को सांत्वना देते हो। भीमसेन! पिछले कुछ दिनों से तुम बहुत अस्वस्थ दिखाई दे रहे हो। यह देखकर मैं बहुत दुःखी हो जाती हूँ और मेरा शरीर एकदम सुस्त पड़ जाता है। अब जब बनवास के दिन ज्यों-त्यों पूरे होने को आ रहे हैं, तुमको इस प्रकार देखकर मैं कैसे धीरज धरूँ ?" द्रौपदी ने भीमसेन का हाथ पकड़कर अपने पास बैठाया और उसके मुँह पर अपना हाथ फेरा।

"भीम! पांचाली ठीक कह रही है।" अर्जुन ने कहा।

"यह तो ठीक ही कह रही है। लेकिन हमारे कुटुम्ब में तो सच-भूठ का तराज़ू अकेले धर्मराज के ही हाथ में है न ?" भीम अकुलाकर बोला।

"भीमसेन! ऐसा कहकर भाईसाहब को क्यों नाहक़ कष्ट पहुँचाते हो ? अब तो बारह वर्ष खत्म ही होने आये; एक वर्ष के बाद तो फिर हम लोग वापस हस्तनापुर में पहुँच जावेंगे।" अर्जुन बोला।

"अरे भाई, उसके पहले फिर दूसरे बारह वर्ष बन में बिताने पड़ेंगे। अपना विचार प्रकट करने के पहले धर्मराज से जाकर पूछ आओ।" भीमसेन बोला।

"भीमसेन! तुम्हारी गिनती ठीक नहीं है। इस तेरहवें वर्ष के अन्त में तो कोई तुम्हारे साथ न आवेगा। अकेली द्रौपदी ही तुम्हारे साथ होगी, यह समझ लो।" द्रौपदी बोली।

"पांचाली! अबके जुए में तो पहले तुम्हींको दांव में रक्खा जायगा, जिससे शास्त्रियों को शास्त्रार्थ भी न करना पड़े। तुम जाकर पहले अपने धर्मराज से जाकर पूछ आओ, फिर मुझसे बात करना।" भीम की आँखों में क्रोध की लपटें-सी मालूम पड़ने लगीं।

"यह सब तो पूछ लिया! देखो महाराज इसी तरफ़ आरहे मालूम पड़ते हैं।" पांचाली बोली।

"वहाँ आराम से बैठे हरिण के बच्चों को हरी-हरी दूब खिला रहे थे, वहाँसे यहाँ भला क्यों आये?" भीम से बिना बोले न रहा गया।

"आइए भाईसाहब!" अर्जुन ने नमस्कार किया। द्रौपदी ने युधिष्ठिर के लिए आसन बिछाया और वह उसपर बैठ गये।

"कहो भाई भीमसेन! आज तो तबीयत ठीक है न!" युधिष्ठिर ने पूछा।

"रोज़ से तो आज कुछ ठीक मालूम होती है।" अर्जुन बोला।

"मन को खूब शान्त रखना चाहिए। मन की समतौलता को

जरा भी नहीं खोना चाहिए। मानव-जीवन में यही एक बड़ा पुरुषार्थ है।" युधिष्ठिर ने कहा।

"इसीलिए तो दुर्योधन ने हम लोगों को जंगल में भेज रक्खा है।" भीम ने कठोरता के साथ कहा।

"यह बड़ा-सा जंगल, जंगल के बड़े-बड़े वृक्ष, उस बादल के साथ बातें करनेवाले ये पहाड़, विश्वास से निर्भय होकर चलनेवाले ये पशु, वृक्षों पर किल्लोल करनेवाले ये पक्षी, यह अनन्त आकाश, पहाड़ की गोदी को चीरकर निकलती हुई नदियाँ, नदी के दोनों किनारों पर कूदनेवाले ये हरिण, इस सारी सृष्टि के बीच निवास करना—ऐसा तो किसी सम्राट् के भाग्य में भी नहीं होता।" युधिष्ठिर बोले।

"ठीक है महाराज!" भीमसेन ने कहा, और यह कहते-कहते वह घुटनों के बल बैठ गया, "महाराज युधिष्ठिर! हस्तिनापुर में जाकर किसी कुशल वैद्य से अपने दिमाग़ की परीक्षा करालें तो दुर्योधन को और शकुनि को यह निश्चय होजाय कि हम लोगों को जंगल में भेजने में उनका जो उद्देश्य था वह पूरी तरह सिद्ध होगया है।"

"भाई भीम, ऐसा क्यों?" अर्जुन ने पूछा।

"श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण! आपकी बात बिलकुल ठीक है।" भीम इस प्रकार बोला मानों कोई बात उसे याद आ रही हो, "दूसरे लोग बिलकुल समझ न सकें ऐसी बहुत-सी बातें आप भावी के गर्भ में पहुँचकर देख सकते हैं। इसीलिए आप ईश्वर हैं।"

"भीमसेन! तुम्हारे कहने का मतलब मैं नहीं समझ सकी।" पांचाली बोली।

"हम लोगों को कौरवों ने बनवास दिया," भीमसेन कहने लगा, "उसके बाद तुरन्त ही श्रीकृष्ण हम लोगों से मिलने के लिए बन में आये थे; वह प्रसंग याद है न?"

"हाँ, आये तो थे।" अर्जुन ने जवाब दिया।

"उस समय एक बार वह भोजन करके बिछौने पर लेट रहे थे, और सात्यकि पास में बैठा हुआ था। सात्यकि ने श्रीकृष्ण से पूछा—'महाराज, इन पाण्डवों को बन में भेजकर कौरव कौन-सा लाभ प्राप्त करना चाहते हैं? मुझे तो ऐसा लगता है कि पाण्डव जब बनवास में से वापस लौटेंगे तब कौरवों के प्रति ज्यादा वैर-भाव लेकर ही आवेंगे। शकुनि जैसे चालाक आदमी ने भी अपने हिसाब में कुछ ग़लती की है, ऐसा मालूम होता है।'"

"ऐसी बातें हुई थीं?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"हाँ, मैं उस समय पास ही के कमरे में था।" भीमसेन ने कहा।

"फिर श्रीकृष्ण ने क्या कहा?" अर्जुन ने पूछा।

"फिर श्रीकृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा—'सात्यकि, तू अभी राजनीति के दाँव-पेच में होशियार नहीं हुआ है। जिस युक्ति से यह वनवास दिया गया है, अगर वह सफल होगई तब तो फिर उनकी चाँदी है। शकुनि ने यह हिसाब लगाया होगा कि पाण्डवों को बारह वर्ष के लम्बे समय तक बनवास में धकेल देने से उनका क्षात्र-धर्म जड़-मूल से नष्ट होजायगा। मनुष्य का क्षात्रतेज चाहे

जैसा उग्र हो तो भी उस तेज को क़ायम रखने और उसका विकास करने के लिए उसके आसपास अनुकूल वातावरण की ज़रूरत है। पाण्डव इन्द्रप्रस्थ या हस्तिनापुर में रहें तो उन्हें हमेशा यही लगेगा कि हम पाण्डु के पुत्र हैं और संसार के स्वामी बनकर उसपर राज्य करने के लिए हमने जन्म लिया है। राजधानी में हर रोज़ उनके कानों पर उनके पूर्वजों के पराक्रमों की बातें आ-आकर टकराती हों, रोज़ दिनभर में अमुक घण्टे रथ हाँकने, घोड़ों को दौड़ाने, शस्त्रास्त्र चलाने में आदि युद्ध-कलाओं में लगे रहते हों, हर रोज़ ऐसी ही योजनाओं पर विचार करना पड़ता हो कि आज महाराज अमुक देश को जीतेंगे, रोज़ एक-दो छोटे-मोटे राजाओं के मुकुट युधिष्ठिर के चरणों में पड़ते हों, रोज़ देश-विदेश के राज्यों में कोई-न-कोई उथल-पुथल मचा ही करती हो, और रोज़ तिजोरी में कहीं-न-कहीं से अपार धन आकर इकट्ठा होता हो, तो क्षत्रियपुत्र का शरीर और मन स्वाभाविक रूप से अपने क्षात्रतेज का स्मरण करेगा और उसे अनायास ही पोषण मिलता रहेगा। बनवास ऐसे क्षात्र-जीवन के लिए अनुकूल नहीं है। बनवास की हवा ब्राह्मण-जीवन की हवा है। बनवास में युधिष्ठिर को छोड़कर दूसरे चारों भाई तो बिलकुल निस्तेज हो जानेवाले हैं, और उसमें भीम तो ख़ास करके।' श्रीकृष्ण ने सात्यकि से इस प्रकार जो कहा था वह सब मुझे सच होता जान पड़ता है। महाराज शकुनि का हिसाब सच होजाय तो फिर क्या कहना है। देवी,अर्जुन! बस, फिर तो सब ख़त्म ही समझो।" भीम ने एक ठण्डी साँस ली।

"भाईभीमसेन, तुम तो बड़े उतावले हो रहे हो। भाईसाहब जो कहते हैं उसे भी तो ज़रा समझ लो!" अर्जुन ने चिढ़कर कहा।

"भाईसाहब क्या कहते हैं?" भीम ने गुस्से से पूछा।

"मैं तो यह कहता हूँ कि मन को समतौल रक्खो और जिस समय जो धर्म लगे उसके अनुसार काम करो।" युधिष्ठिर बोले।

"अच्छी बात है। यह मन का समतौलपन भी कर लिया। लेकिन, बतलाइए, अब बनवास के अन्त में हमारा क्या धर्म है?" भीम ने पूछा।

"कहिए, महाराज! आप ही कहिए।" अर्जुन बोला।

"बनवास के अन्त में धर्म तो लड़ने का ही है। इसमें और अब पूछना क्या बाक़ी रह गया है?" द्रौपदी बोली।

"बनवास के अन्त में हमें दुर्योधन से अपने राज्य की माँग करनी चाहिए।" युधिष्ठर बोले।

"माँग किस बात की?" पाञ्चाली बोल उठी।

"अपने हक़ों की।" युधिष्ठिर बोले।

"दुर्योधन हमारी माँग मंजूर करेगा? दुनिया में किसीने शत्रु की माँग स्वीकार की है?" भीम ने पूछा

"मंज़ूर क्यों नहीं करेगा? हमारी माँग ठीक हो, प्रतिष्ठित पुरुष की मार्फ़त उसे पेश किया जाय, और भीष्म, द्रोण जैसे कुरु-वृद्ध दुर्योधन की सभा में मौजूद हों, तो हमारी माँग क्यों न मंजूर होगी, यह बात मेरे गले नहीं उतरती।" युधिष्ठिर ने कहा।

"महाराज, मुझे माफ़ कीजिए। पर दुनिया में किसीने किसी

निर्वीर्य माँग को मंज़ूर किया हो, ऐसा सुना नहीं गया। हमारी माँग के पीछे अगर हमारी तलवारों का बल होगा तो त्रैलोक्यपति को भी उसे मंज़ूर करना पड़ेगा। नहीं तो ऐसी कितनी ही माँगों को दुनिया के सम्राट् घोलकर पी गये हैं, यह क्या आप नहीं जानते ?" द्रौपदी भी जोश में आगई।

महाराज! अब अगर माँग ही करनी हो, तो भीम और अर्जुन अपनी गदा और अपने गाण्डीव से ऐसा करगे।" भीम उबल पड़ा।

भीमसेन! ज़रा शान्ति से बोलो।" अर्जुन ने कहा।

"शान्ति से कैसे बोलूँ ? हृदय जब अन्दर से जल रहा हो तब फिर बाहर की शान्ति कहाँसे लाऊँ ? तुम सब लोगों ने इस बनवास में शान्ति सीख ली होगी, लेकिन मैंने इस बनवास में सब जगह साँप और नेवलों की लड़ाई ही देखी है। इसलिए मैं तो शान्ति सीख ही नहीं सका।" भीम बोला।

"भीमसेन का कहना बिलकुल ठीक है।" पाञ्चाली ने कहा।

"देवी पाञ्चाली! भीम जो कुछ कहता है उसका अर्थ मैं समझता हूँ। लेकिन जिस धर्मबुद्धि से आजतक हम लोग चलते आये हैं उसीके अनुसार आगे भी चलेंगे तो विजय अन्त में हमी लोगों की है।" युधिष्ठिर बोले।

"महाराज! मुझे माफ़ कीजिए। अब मुझे आपकी धर्मबुद्धि में विश्वास नहीं रहा।" भीम ने कहा।

"अगर यह बात है, तो हम श्रीकृष्ण की सलाह लेंगे।" युधिष्ठिर ने कहा।

"यह ठीक है। लेकिन अब तो श्रीकृष्ण ना कहें तो भी मैं तो युद्ध ही पसन्द करूँगी।" पाञ्चाली बोली।

"भाईसाहब! धर्मराज! युधिष्ठिर!" भीम से न रहा गया। "आप धर्म-कर्म की बातें तो कर रहे हैं, लेकिन इस पाञ्चाली की चोटी की तरफ़ भी देखा है! यह चोटी क्या कह रही है, यह आपको सुनाई देता है? आपको मालूम है कि यह चोटी दुःशासन और दुर्योधन के ख़ून के लिए तरस रही है? इस अर्जुन का अँगूठा आपने देखा है? यह हाथ गाण्डीव का टङ्कार करने के लिए ही पैदा हुआ है, यह आपको मालूम है? उस वृक्ष के ऊपर बैठे हुए नकुल और सहदेव बाँस की बाँसुरी बजा रहे हैं, वह आपको सुनाई देती है? बेचारे बाँसुरी न बजावें तो क्या करें? रण-संग्राम में भयंकर शंखनाद करने का अवसर तो आपने छीन लिया, तब और करें भी क्या? महाराज! अभी भी आपकी आँखें खुलती हैं या नहीं?" भीम ने युधिष्ठिर के हृदय में चोट की।

"महाराज! भीमसेन ठीक ही कहते हैं। बनवास के अन्त में तो कौरवों के साथ युद्ध, युद्ध और युद्ध ही हो सकता।" द्रौपदी उत्साह से मानों उछल रही हो, इस तरह बोली।

"देवी! युद्ध के परिणामों का भी कुछ खयाल किया है?" युधिष्ठिर बोले।

"परिणाम का ख़याल तो परिणाम के आने के बाद देखा जायगा। आज तो सिर्फ़ एक ही ख़याल सामने है। मेरे पतियों को बनवास में धकेलनेवाले और भरी सभा में मेरी बेइज़्ज़ती करने-

वाले को युद्ध के सिवाय दूसरा जवाब ही नहीं हो सकता। परिणामों के ख़याल का काम बनियों को सौंपिए। हम तो अपने क्षात्रधर्म को ही सम्हालें।" पाञ्चाली बोली।

"क्षात्रधर्म के थोथे जोश में क्या व्यर्थ ही बरबाद होजायें?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"बनियों की तरह आगे-पीछे का जोड़-तोड़ लगाकर जीना क्षत्रियों के लिए मौत है और क्षात्रधर्म का पालन करते हुए मरना भी पड़े तो उसमें भी जीवन है।" पाञ्चाली बोली।

चर्चा में बहुत गर्मी आ गई थी, इसलिए अर्जुन ने बीच में पड़कर कहा—"भाईसाहब! भीमसेन और देवी पाञ्चाली जो कहते हैं वह भी विचार करनेयोग्य तो है ही। और आप जो कहते हैं उसके अनुसार हमें धर्मबुद्धि से विचार करके भी चलना है; लेकिन वह धर्मबुद्धि अगर हमें कायरता की ओर ले जायगी तो हम लोगों की मौत ही होगी। भीमसेन! देवी! ये प्रश्न बहुत विचारने योग्य हैं, इसलिए इनका निर्णय इस समय हम नहीं कर सकेंगे। और किसी समय स्वस्थ मन से हम लोग यह विचार करेंगे। अभी अज्ञातवास का पूरा एक वर्ष बाक़ी है, इसलिए अभी इसकी कोई जल्दी भी नहीं है।"

"जल्दी तो है ही। क्योंकि एक बार अन्तिम निश्चय हो-जाय तो अज्ञातवास के बीच और उसके बाद फिर दूसरे किसी रास्ते के विचार का सवाल ही न रहे और हम अपनी सारी शक्ति को एक ही रास्ते पर केन्द्रित करें।" द्रौपदी ने कहा।

"यह भी ठीक है। अब थोड़े ही दिनों में श्रीकृष्ण हमारे पास आनेवाले हैं। महाराज द्रुपद और धृष्टद्युम्न भी आवेंगे। सबके साथ बातचीत और सलाह-मशविरा करके हम लोग इसका निर्णय करेंगे।" अर्जुन ने विवाद को समाप्त किया।

"अच्छा; तो यही ठीक है।" पाञ्चाली बोली, "भीमसेन! शाम होने में अब थोड़ी ही देर है, इसलिए चलो हम लोग जरा उन पहाड़ों की तरफ़ एक चक्कर लगा आयें।"

पाञ्चाली और भीमसेन पास वाले पहाड़ों की तरफ़ चल दिये। नकुल और सहदेव जिधर बंसी बजा रहे थे उधर महाराज युधिष्ठिर गये और अर्जुन धनुष-बाण लेकर पास के बन में गया।

: ६ :

सरेन्ध्री का गन्धर्व

सुदेष्णा विराट राजा की रानी थी। कीचक उसका भाई था। कीचक विराट राजा की सेना का सेनापति था और पुलिस-विभाग का प्रधान भी वही था। कीचक के सौ भाई भी विराट राज में ही थे।

एक बार सुदेष्णा और कीचक महल में बैठे हुए बातचीत कर रहे थे।

"भाई कीचक!" रानी बोली, "उस कुलटा से कितनी बार कहा, लेकिन मानती ही नहीं। मैं कहती हूँ कि 'भय्या को खाना दे आ; भय्या के लिए ये जो नई तरह के तेल-इत्र लिये हैं, वे उन्हें दे आ।' लेकिन वह तो खिसकती ही नहीं।"

"ख़ैर! देखा जायगा।" कीचक बोला।

"पर तू उसके लक्षण तो देख। उस कुलटा का हौसला तो राजा के पलंग पर बैठने का है! लेकिन सुदेष्णा को वह नहीं पहचानती। मैंने तो जिस दिन वह आई उसी दिन उसका रूप देखकर कह दिया था, कि 'तू बहुत सुन्दर है बाबा, तेरे लिए मेरे यहाँ गुंजाइश नहीं है'; पर उसने कहा कि 'रानीजी, मेरे लिए चिन्ता न करें। पाँच गन्धर्व मेरी रक्षा करते हैं, इसलिए राजा भी मुझपर नज़र नहीं डाल सकते।' लेकिन अब तो राजा के आते ही वह न

जाने कहाँ से दौड़ आती है, और बृहन्नला के साथ तो न जाने क्या घुसपुस-घुसपुस करती रहती है।" रानी ने कहा।

"बहन, तू फ़िक्र न कर।" कीचक बोला।

"फ़िक्र कबतक नहीं करूँगी? दूसरी पद्मिनी जैसी स्त्रियाँ तेरा नाम सुनते ही वश हो जाती हैं, और यह कुलटा इतनी-इतनी मिन्नतें करने पर भी नहीं मानती। इसे अपने रूप का जो घमण्ड है उसे तो नष्ट करना ही चाहिए।" रानी ने अपने दाँत पीसे।

"इसीलिए तो कल भरी सभा में मैंने उसे चोटी पकड़कर घसीटा था।" कीचक बोला।

"हाँ, मुझे मालूम हो गया था। लेकिन फिर उसके गंधर्व पति आये या नहीं?" रानी ने पूछा।

"कौन आता है उसका बाप!" कीचक ने कहा।

"भय्या! तूने उसकी शेखी किरकिरी करदी, यह ठीक ही किया। वहाँ राजा भी थे या नहीं?"

"उनके सामने ही मैंने उसे धर पटका।" कीचक ने बताया।

"राजा ने इसपर क्या कहा?" रानी ने पूछा।

"राजा क्या कहते? अब राजा के कहने जैसा रहा भी क्या है! राजा का काम तो सिर्फ गद्दी पर बैठे रहना है, राज्य चलाने का सारा भार मेरे इन बलिष्ठ कन्धों पर ही है।" कीचक ने छाती तानते हुए कहा।

"शाबास भय्या! अब इस कुलटा से तू एक बार हमेशा के लिए निपट ले तो मुझे शान्ति मिले।" रानी बोली।

"बहन, एक बात कहता हूँ। लेकिन वह बहुत ही गुप्त है। किसीसे कहना मत।" कीचक बोला।

"भय्या! मैं और किसीसे कहूँगी! मेरा विश्वास नहीं है?" रानी ने कहा।

"विश्वास तो बहुत है। लेकिन बात कुछ ऐसी ही है, इसलिए ज्यादा आग्रह करके गुप्त रखने के लिए कहता हूँ।" कीचक ने समझाया।

"मैं किसीसे कहनेवाली नहीं हूँ, भय्या!" रानी बोली।

"तो सुन! कल मैंने सैरेन्ध्री को भरी सभा में घसीटा था, उसके बाद आज सुबह वह मेरे पास आई थी।" कीचक बोला।

"ऐसा! तो मेरे विना कहे ही वह ख़ुद अपनेआप तेरे पास आई?" रानी बोली।

"अब भी न आवेगी?"

"कैसे आई थी?" रानी ने पूछा।

"आकर मुझे कहने लगी—'देखो, मैं तुम्हारे पास आने को राज़ी हूँ, लेकिन मेरे गंधर्व पति यह जानने न पावें, इसीलिए आज रात को हम नई संगीतशाला में मिलेंगे। यह बात तुम किसी-से भी मत कहना। नहीं गंधर्व पति जान जावेंगे तो बड़ा अनर्थ हो जायगा।"

"तो अब यह कुलटा ठिकाने पर आई! पहले तो रोज 'मेरे गंधर्व पति!', 'मेरे गंधर्व पति!' कहकर मुझे डराती रहती थी।

गंधर्व होते क्या हैं ? पत्थर ! गंधर्व हो तो उसकी ऐसी दशा होती ?" रानी उछल-उछलकर बातें करने लगी ।

"बहन, यह तो मैं पहले से ही जानता था । हम पुरुष लोग स्त्रियों को उनके पैरों पर से ही परख लेते हैं । लेकिन यह सैरेन्ध्री तो तुम कहती हो वैसी नहीं लगती । उसकी आँखों में कुलटा स्त्रियों जैसी चपलता नहीं है । इसलिए अगर मान जाय तो मैं तो उसे अपने अन्तःपुर में रखने की सोचता हूँ ।" कीचक ने अपने मन की बात कही ।

"भय्या ! कितने ही खसम इसने किये होंगे और कितने ही करेगी यह । आज तो तेरा अपना स्वार्थ है न, इसलिए तुझे यह अच्छी दिखाई दे रही है । मेरी ओर से तो तू इसे लेजाय तो मेरे सिर की बला टले । फिर मुझे विराट राजा के लिए कोई डर न रहे ।" रानी ने कहा ।

"तो आज रात को संगीतशाला में उसे भेजना । साथ में दूसरा कोई न हो ।" कीचक उठता-उठता बोला ।

"अच्छी तरह बनाव-श्रृंगार कराके भेजूँगी ।" रानी ने कहा ।

"नहीं, नहीं; रोज़मर्रा के ही वेश में । नहीं तो व्यर्थ ही और किसीको शंका होजायगी ।" कीचक ने आग्रहपूर्वक जताया ।

"हाँ, यह भी ठीक है । तो भय्या, इस कुलटा को एक बार किसी तरह अपने वश में करले । फिर तो बस बेड़ा पार है । अच्छा भय्या, चल दिया ? ईश्वर तेरा भला करे ।" रानी

कीचक को बिदा करने के लिए खड़ी हुई। कीचक अपने महल की ओर चल दिया।

अँधेरी रात थी। संगीतशाला और उसके आसपास के दीये बुझा दिये गये थे। शाला के बाहर के रास्तों पर पहरा देनेवाले पुलिसवाले बीच-बीच में गश्त लगाकर अपनी नौकरी बजा रहे थे। संगीतशाला के पलङ्ग पर लेटा हुआ भीमसेन विराट् राजा के साले की राह देख रहा था।

रात के नौ-दस बजे का समय होगा। ऐसे समय में विराट राजा के साले, सेनापति और पुलिस के प्रधान कीचक ने संगीत-शाला में प्रवेश किया। आज उसकी खुशी का ठिकाना नहीं था, क्योंकि आज उसकी वासना-तृप्ति का अवसर आया था। सैरेन्ध्री से मिलने के लिए आज उसने अपनेको खूब सजाया था। उसके कपड़ों में से सुगन्ध की लपटें उठ रही थीं। उसका मुँह सुवासित हो रहा था, आँखों में गहरा अंजन लगा हुआ था, और शराब ने मानों उसके शरीर में नवचेतन भर दिया था। सिवाय सैरेन्ध्री के और कुछ उसे दिखाई ही नहीं देता था।

कीचक संगीतशाला में दाख़िल हुआ। दरवाज़ा खोला और बन्द किया। दीया तो वहाँ था ही नहीं, इसलिए काम के वशीभूत होकर अँधेरे में टटोलते-टटोलते वह पलङ्ग की ओर गया।

पलङ्ग के पास आकर भीम के शरीर पर हाथ फेरते हुए उसने कहा—"प्यारी सैरेन्ध्री! आज मेरा जीवन धन्य हुआ। मेरा घर, मेरे दास-दासी, मेरा धन, यह सब आज मैं तुझे अर्पण करता हूँ।"

पलङ्ग पर सोया हुआ भीमसेन स्त्रियों की-सी आवाज़ में बोला—"राजकुमार कीचक! ईश्वर का उपकार मानो कि आज हम लोग मिले। तुम्हारा रूप देखकर किसे मोह न होगा?"

"प्यारी सैरेन्ध्री! बैठो तो सही! यह कीचक कामशास्त्र में कितना निपुण है, यह आज तुम्हें मालूम होगा।" कहकर कीचक ने भीम के ऊपर का कपड़ा उठाया कि इतने में भीम छलाँग मारकर पलङ्ग पर से नीचे कूद पड़ा और कीचक का गला पकड़ लिया।

"दुष्ट कीचक! तू मुझे कामशास्त्र सिखावे, उसके पहले तो तुझे मृत्युशास्त्र पढ़ना पड़ेगा।" भीम गरजकर बोला।

"सैरेन्ध्री, सैरेन्ध्री! तू कौन है?" कीचक घबरा गया।

"और दूसरा कौन होगा? सैरेन्ध्री तो है सुदेष्णा के महल में।" यह कहकर भीम ने कीचक को ज़मीन पर धर पटका।

कीचक भी मज़बूत था। उस कमरे में दोनों वीरों का युद्ध होने लगा और कीचक ने भी भीम को अच्छी तरह थका दिया। पर कहाँ भीम और कहाँ कीचक? भीम ने कीचक के सारे शरीर को उठाकर ज़मीन पर दे मारा और उसकी छाती पर घुटने टेककर उसका गला पकड़ते हुए कहा—"पापी कीचक! पहचाना मुझे?"

"नहीं।" बड़ी मुश्किल से कीचक ने कहा।

"मैं सैरेन्ध्री का गन्धर्व। अब तू ईश्वर को या जिस किसीको चाहे याद करले। मैं अभी ही तुझे यमराज के पास भेजता हूँ।" भीम बोला।

"गन्धर्वराज ! मुझे मारना हो तो जल्दी ही मार डालो। मुझे बड़ी तकलीफ़ हो रही है।" कीचक ने कहा।

"तो ले मैं तेरा गला जरा ढीला कर देता हूँ। तुझे कुछ कहना हो तो कहले।" भीम बोला।

"मेरा गला ढीला कर देने से मेरा दुःख दूर हो जायगा, ऐसी बात नहीं है। यह मेरी आँखों के सामने कितनी ही स्त्रियाँ अपने सिर के बालों को खोलकर और बड़ी-बड़ी आँखें दिखाकर मुझे डरा रही हैं। गन्धर्वराज ! विराट की इन स्त्रियों पर अत्याचार करते समय मुझे मालूम नहीं था कि अन्त समय मुझे वे इस तरह डरावेंगी। गन्धर्वराज ! मैं अपनी आँखों को बन्द करता हूँ तो वे भी अपनेआप खुल जाती हैं और मेरे सारे शरीर में पसीना आरहा है। विराट की माँ और बेटियो ! तुम शान्त हो जाओ। इस गन्धर्व ने तुम्हारा बदला ले लिया है।" कीचक पागल-सा होकर बड़बड़ाने लगा।

"कीचक ! यहाँ तो कोई नहीं है।"

"है, है। वह देखो वहाँ खड़ी है। वही तो है। उसका मैंने आधी रात को, जब वह अपने बालक को दूध पिला रही थी, उसके घर से अपहरण करवाया था। हाँ, वही है। बहन ! तू अपनी आँखें बन्द करले। मुझे डरा मत।"

"कीचक ! अब जल्दी कर, रात बीत रही है।" भीम बोला, "गन्धर्वराज ! अब मुझे जल्दी ही मार डालो, ताकि मैं इस पीड़ा

से छूट जाऊँ। मुझसे अब यह सब देखा नहीं जाता।" कीचक ने गिड़गिड़ाते हुए कहा।

"लेकिन तुझे कुछ कहना था न?" भीम बोला।

"हाँ, कहना तो बहुत कुछ है। मेरे जैसे राजाओं के साले अगर कुछ कहने लगें तो पुराण भर जायँ। लेकिन तुम इतना सब कहाँ सुनने बैठोगे?" कीचक बोला।

"तो भी इधर-उधर की बातें करता है, उसके बजाय तो जो कहना चहता हो वही कह डाल न!" भीम ने कहा।

"मैं इधर-उधर की कोई बातें नहीं करता, लेकिन न जाने क्यों अपनेआप मुँह से निकली जा रही हैं। विराट की माँ-बेटियाँ गईं?"

"कौन? यहाँ तो कोई नहीं है।"

"तो गंधर्वराज, सुनो! तुम अपने देश से आर्यवर्त्त के इन राजाओं को कहलाना कि कोई भी राजा अपने राज्य में अपने साले को राज्य का अधिकारी न बनावे। राज्य की रानियों से कहलाना कि अगर वे अपने भाई का भला चाहती हों तो अपने भाई को अपने राज्य में न रक्खें। गंधर्वराज! सच बात कहूँ? मैं आज जो मर रहा हूँ, वह अपनी बहन के पापों के कारण। सुदेष्णा ने अगर मुझे इतना न चढ़ाया होता तो मैं निश्चिन्ताई से विराट में अपना गुज़र करता और बुढ़ापे में मरता। लेकिन मेरी बहन ने मुझे उलटे रास्ते चलाया और मैं उस ओर चल पड़ा। गंधर्वराज! विराट राजा को मेरा यह अंतिम प्रणाम! उस

बेचारे को हम भाई-बहनों ने नामर्द बना डाला है। भगवान् उनका भला करें। सुदेष्णा ! पापी बहन ! तुझे क्या कहूँ ? राजमहलों की सफेद दीवारों के पीछे कितने काले काम होते रहते हैं, उनका लोगों को पता भी नहीं चलता। अच्छा विराट के सारे नगर को, विराट की सेना को, विराट के पुलिस वालों को और सैरेन्ध्री को भी मेरा अन्तिम नमस्कार ! सैरेन्ध्री ! क्षमा करना मुझे। अगले जन्म में मालूम होता है मैं शूकरयोनि में जन्म लूँगा। लेकिन अगर किसी पुण्य से मानव योनि में जन्म लूँ, तो भगवान, मुझे सैरेन्ध्री के पेट से पैदा करना—यही तुमसे प्रार्थना है।” कीचक ने बोलना बन्द किया।

“तेरे जैसे पुत्र को पैदा करे तब तो सैरेन्ध्री के नसीब का क्या कहना !” भीमसेन से न रहा गया।

कीचक के चुप होते ही भीमसेन ने उसके सिर में इतने ज़ोर से घूँसा मारा कि उसका सिर धड़ में घुस गया। इसी तरह उसके हाथ और पैरों को भी धड़ के अंदर घुसा दिया और कीचक के सारे शरीर को मांस की एक गेंद जैसा बनाकर और उसे वहीं लुढ़काकर भीमसेन वहाँसे पाकशाला चला आया।

बाद में जब कीचक की मृत्यु की खबर मिली और कीचक के भाई उसमें सैरेन्ध्री का ही दोष बताकर सैरेन्ध्री को कीचक के साथ ही एक चिता में जला देने को तैयार हुए तब भीमसेन गंधर्वों का विचित्र वेश पहनकर स्मशान में आया और सैरेन्ध्री को वहाँसे छुड़ाकर रानी के महल में पहुँचा दिया।

: ७ :

रुधिर-पान

कौरव-पाण्डवों का युद्ध शुरू हुए आज सत्रह दिन हो गये। दुर्योधन की सेना के स्तम्भ-रूप भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य तो कभी के रणभूमि में सोगये थे। सिन्धुराज जयद्रथ कौरवों की एकमात्र बहन दुःशला को रोती हुई छोड़कर मृत्यु के मुख में चले गये थे। पाण्डवों की तरफ़ के भी कितने ही महारथी स्वर्ग सिधार गये थे। वीर अभिमन्यु छः महारथियों से टक्कर लेते-लेते वीरशय्या में सो चुका था। भीमसेन का राक्षस पुत्र घटोत्कच कौरव-सेना में हाहाकार मचाकर अन्त में कर्ण के हाथों मृत्यु को प्राप्त हुआ था। अठारह अक्षौहिणी सेना का बड़ा हिस्सा तो मृत्यु के मुख में कभी का पड़ चुका था।

फिर भी…………

फिर भी इस काल-युद्ध में ख़ास-ख़ास लोग रणभूमि में घूम रहे थे। कुरुक्षेत्र के मैदान में सत्रह-सत्रह बार सूर्य उदय हुए और सत्रह लम्बी-लम्बी रातें बीत गईं। सत्रह दिनों से भीम और दुःशासन तथा भीम और दुर्योधन एक-दूसरे को खोजते फिरते थे, मौक़ा मिलने पर एक-दूसरे के साथ लड़ते थे, एक-दूसरे को पछाड़ते थे, एक-दूसरे को घायल करते थे, एक-दूसरे के रथ को तोड़ते थे, एक-दूसरे के सारथियों को घायल करते थे, फिर भी अभीतक वे ज़िन्दा थे।

कर्ण कौरव सेना का सेनापति हुआ। उसके रथ के सारथी मद्रदेश के राजा शल्य थे। पाण्डुपुत्र अर्जुन को मारकर दुर्योधन की विजय कराना कर्ण का मनोरथ था।

लेकिन सत्रहवें दिन का सवेरा कुछ और ही तरह का हुआ। युद्ध शुरू होने पर कर्ण अर्जुन को खोजता हुआ एक ओर निकल गया। दूसरी ओर भीमसेन और दुःशासन की भेंट हो गई।

युद्ध में भीम और दुःशासन की यह कोई पहली ही भेंट नहीं थी। आज से पहले सोलह दिनों में वे कई बार एक दूसरों से भिड़ चुके थे। कई बार दाँत किटकिटाकर उन्होंने एक-दूसरे को घूरकर देखा था। और कई बार ऐसा भयंकर युद्ध भी किया था मानों एक-दूसरे के प्राण अभी लेलेंगे।

लेकिन आज का दिन तो फिर आज का ही दिन ठहरा। दोनों पक्षों की सेनायें लगभग क्षीण हो गई थीं, दोनों पक्षों के अंगुलि पर गिने जाने जितने ही धुरन्धर वीर ज़िन्दा बाक़ी रह गये थे। ऐसे समय भीम और दुःशासन एक-दूसरे के आगे आये और अपने बैर का अंतिम बदला लेलेने के इरादे से आपस में भिड़ पड़े।

"दुष्ट दुःशासन! खड़ा रह। आज तू मेरे झपट्टे में से छूट नहीं सकता।" भीमने गरजकर कहा।

"अबे रहने दे, अघोरी कहीं के! अपनी बकवास अपने ही पास रख! अरे, जो मनों नाज खा जाता है, ऐसे आदमी से कभी कोई बड़ा पराक्रम होते भी सुना है?" दुःशासन भीम की खिल्ली उड़ाता हुआ बोला।

घायल सिंह जिस तरह से क्रुद्ध होता है उसी तरह क्रोधित होकर भीमसेन बोला, "अरे, ओ अन्धे के बच्चे दुःशासन! आज-तक भीमसेन ने जितने पराक्रम किये हैं, इसका तुझे कैसे पता चल सकता है? पिछले सोलह दिनों में भीम के हाथों हाथियों की कितनी सेना का नाश हुआ, इसका हिसाब लगाया है? इसी अघोरी भीमसेन ने खुद तेरे ही कितने भाइयों को मार डाला है, इसका हिसाब लगाया है? इस बकवास करनेवाले भीमसेन ने तेरे कितने रथों को तोड़ डाला है, इसका हिसाब करने के लिए तो तुझे अभी गुरु द्रोणाचार्य के पास ही भेजे देता हूँ। चल, अब तैयार हो जा। भीम के पराक्रम के बारे में अब तुझे सुनना नहीं पड़ेगा, बल्कि स्वयं ही अनुभव होजायगा।" भीम ने ललकारा।

भीम और दुःशासन का युद्ध शुरू हुआ। गंगा नदी के किनारे किसी जंगल में मानों साठ-साठ वर्ष के दो मदोन्मत्त हाथी लड़ते हों, इस प्रकार वे लड़ने लगे। दोनों वीर थे, दोनों में हज़ार-हज़ार हाथियों का बल था, दोनों युद्ध-प्रवीण थे, और दोनों एक-दूसरे के प्रति गहरे द्वेष से भरे हुए थे।

दुःशासन के दोनों तरफ़ कुरु-योद्धा उसकी रक्षा को खड़े थे। अश्वत्थामा, दुर्योधन, कृपाचार्य आदि सब वहाँ आगये थे। बाद में कर्ण भी कुछ दूरी पर आगया।

दोनों एक-दूसरे को थका रहे थे, इतने में भीम ने अपनी गदा ज़ोर से दुःशासन पर फेंकी। गदा के इस तीव्र प्रहार से दुःशासन का रथ चूर-चूर हो गया; उसकी ध्वजा टूट गई और सारथी भी

मर गया। गदा के प्रहार से वह खुद भी बेहोश होकर नीचे गिर पड़ा। यह देखकर सिंह जैसे अपने शिकार के पास पहुँच जाता है उसी प्रकार भीम भी उसके पास पहुँचा और उसकी छाती पर पैर रखकर खड़ा हो गया।

"ओ कुरु योद्धाओ! यह भीमसेन तुम्हारे दुःशासन को मार रहा है, अब जिस किसीकी हिम्मत हो वह यहाँ आकर इसकी रक्षा करे।" भीम ने गर्जना की, "सूतपुत्र कर्ण! अपने इस दुर्योधन के भाई को बचाओ न! तुम कौरवों को विजय दिलाने की बड़ी-बड़ी बातें तो करते हो, पर आज भीम के चंगुल में से अपने इस दुःशासन को तो छुड़ाओ। दुर्योधन, दुर्योधन! अब कहाँ जाकर छिप गया? द्रौपदी को बुलाने के लिए तूने इस दुःशासन को भेजा था, तो अब आकर तू और शकुनि इसको बचाते क्यों नहीं? मामा शकुनि! क्यों तुम्हारे हिसाब में कुछ फ़र्क़ पड़ गया क्या?"

भीमसेन इस प्रकार अण्ट-शण्ट चिल्ला रहा था, इतने में दुःशासन को कुछ होश आया और उसने भीम की तरफ़ देखा। भीम उसे होश में आता देखकर और भभक उठा: "पापी दुःशासन! तूने जिस हाथ से सती द्रौपदी की चोटी पकड़ी थी और जिस हाथ से तूने उसका चीर खींचा था, वह हाथ तो बता।"

भीम के मुँह से ये शब्द सुनते ही वीर की तरह हिम्मत करके दुःशासन ने अपना दाहिना हाथ ऊँचा किया और कहा, "ले पांचाली की चोटी पकड़नेवाला, उसके चीर को खींचनेवाला, धृतराष्ट्र

की पुत्र वधू का पाणिग्रहण करनेवाला और हज़ारों सुवर्ण मुद्राओं का दान देनेवाला यह रहा मेरा हाथ !"

दुःशासन ने अपना दाहिना हाथ ऊँचा किया कि तुरन्त ही भीमसेन ने उसे पकड़ लिया और कहा, "दुःशासन ! मैं तुझे अभी मारे डालता हूँ । तेरा अन्त समय अब नज़दीक ही है । अन्त समय तुझे किसीसे कुछ कहना हो तो कहले ।"

"भीमसेन ! तू ख़ुशी से मुझे मार डाल । तुझे दुःख देने में मैंने कुछ उठा नहीं रक्खा था । ठेठ बचपन से ही तुझे देखकर मेरी आँखों में ज़हर उतर आता था । द्रौपदी के आने के बाद वह ज़हर और भी बढ़ा, और वह आज तक क़ायम है । आज तेरे हाथों वीर की तरह मरते हुए मुझे बड़ा आनन्द है । लेकिन एक बात मेरे मन में उठ रही है ।" दुःशासन बोला ।

"अपने मन में जो हो वह कह डाल ।" भीम ने कहा ।

"भीमसेन ! मैं तो अब मौत के दरवाज़े बैठा हूँ, इसलिए दुनिया का ईर्षा-द्वेष मेरे मन से जारहा है और कोई नई ही सृष्टि मेरी नज़रों के सामने खड़ी हो रही है । तू अपनी दुश्मनी भूलकर मेरी बात सुनेगा ? क्या तू यह नहीं मानता कि मनुष्य चाहे जैसा पापी हो, पर अन्त समय जब उसके जीवन का किया-धरा उसकी आँखों के सामने आता है तब वह झूठ नहीं बोल सकता ?" दुःशासन बोला ।

"दुःशासन ! तुझे जो-कुछ कहना हो वह खुशी से कह ।" भीम ने कहा, "तू जो भी कुछ कहेगा, उसपर आज तो मुझे विश्वास है ।"

"भीमसेन ! ज़रा मेरे इस हाथ को तो छोड़। अरे, कैसी बदबू इसमें आरही है ! इस बदबू को मैं आजतक पहचान न सका था। भीमसेन ! द्रौपदी से कहना कि तेरी चोटी पकड़नेवाले और तेरा चीर खींचनेवाले हाथ की आज कैसी दुर्गत हुई। भीमसेन ! एक बात करोगे ?" दुःशासन बोला।

"तू मेरे इस हाथ को धड़ से जुदा करके इन दोनों सेनाओं को अच्छी तरह दिखाना। द्रौपदी के अपमान का यह मेरा प्रायश्चित्त है।" दुःशासन की आँखों में पानी भर आया।

"दुर्योधन से कुछ कहना है ?"

"भाईसाहब से क्या कहूँ ? कर्ण से भी क्या कहूँ ? मैं तो आज जारहा हूँ। वे लोग भी मेरे पीछे आरहे हैं। भीम ! कोई यहाँ रहनेवाला नहीं है। तुम अगर यह मानते हो कि कौरवों के मरने के बाद पृथ्वी तुम्हें मिल जायगी, तो यह तुम्हारी भूल है। तुम्हें भी मैं अपने पीछे आता हुआ देख रहा हूँ। भीमसेन ! अब आँखों के आगे अँधेरा छारहा है।" दुःशासन का बोल बन्द होगया।

दुःशासन का बोल बन्द होते ही भीम ने उसका दाहिना हाथ धड़ में से खींचकर अलग किया और उस हाथ को दोनों सेनाओं के योद्धाओं को दिखाया।

भीमसेन ने जब दुःशासन का हाथ ऊँचा किया तो आकाश में से एक दिव्यवाणी सुनाई दी :—

"दुनिया-भर की स्त्रियों के केशपाश खींचनेवाले लोगो !

दुःशासन का यह संदेशा सुनो ! तुम लोग जब-जब दुनिया की माताओं, पत्नियों तथा बहन-बेटियों को सताओ, उनका अपमान करो, उनकी चोटियों को खींचो, उनके चीर खींचो, उस समय यह भी याद रखना कि पृथ्वी के किसी हिस्से में एकाध भीमसेन भी तुम्हारे हाथों को धड़ से जुदा करने के लिए तैयार ही बैठा है। जबतक इस जगत् में पांचाली के समान स्त्रियाँ हैं और जबतक दुनिया में दुःशासन-जैसे लोग हैं, तबतक संसार के किसी हिस्से में भीमसेन भी पैदा होता रहेगा और पांचालियों का बदला लेगा। जगत् का कोई भी दुःशासन इस बात को न भूले।"

दुःशासन की आख़िरी बातों को सुनकर भीमसेन का हृदय भी थोड़ी देर के लिए पिघल गया, और उसके हृदय में से वैर-भाव भी मिट गया। लेकिन अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने और कौरवों की सेना में भय व आतंक पैदा करने के ख़याल से वह दुःशासन के शव का गरम-गरम ख़ून पीने लगा और बोला, "कुरुक्षेत्र के मैदान में एकत्र वीर क्षत्रियो ! भीम ने भरी सभा में जो प्रतिज्ञा ली थी, आज दुःशासन का ख़ून पीकर वह उसे पूरी कर रहा है। जो मिठास शहद, शकर, अंगूर, अमृत या माता कुन्ती के दूध में है उससे भी अधिक मिठास आज मुझे इस ख़ून में मालूम होती है। प्यारी पांचाली ! आज भीम कृतार्थ हुआ।"

भीम का यह भयंकर कृत्य सैनिक देख न सके।

थोड़ी ही देर में फिर पहले जैसा ही युद्ध होने लगा।

: ८ :

अभिमान दूर होता है

महाभारत का युद्ध ख़त्म हुआ और विजय के अन्त में महाराज युधिष्ठिर का हस्तिनापुर में राज्याभिषेक हुआ। खून से सने हुए इन काँटों के राजमुकुट को कुछ वर्षों तक तो युधिष्ठिर ने किसी तरह अपने सिर पर धारण किया। लेकिन बाद में तो उसके काँटे पाण्डवों के अन्तर में ऐसी वेदना करने लगे कि अन्त में युधिष्ठिर ने राजमुकुट अपने सिर पर से उतारकर अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित के सिर पर रक्खा और ख़ुद पाण्डवों तथा द्रौपदी के साथ हिमालय जाने का निर्णय किया।

महाराज परीक्षित ने छत्र-चँवर धारण किया और राजमुकुट उनके तरुण सिर पर शोभा देने लगा। अभिमन्यु के पुत्र को राजगद्दी पर बैठा देखकर राजमाता उत्तरा के हर्ष का पार न रहा और सारे हस्तिनापुर में परीक्षित का जयजयकार होने लगा।

पर भीमसेन इस मंगल-प्रसंग पर महल के एक कमरे में किसी गहरे विचार में लीन था।

"तुम यहाँ कैसे बैठे हो, भीमसेन! सब लोग आनन्द मना रहे हैं, तब तुम यहाँ कैसे छिपे पड़े हो?" द्रौपदी ने आकर भीम को खदेड़ा।

भीम ने द्रौपदी की ओर देखा: "देवी! तुम्हारे सिर पर से

आज साम्राज्ञी का भार दूर हुआ, इससे हृदय हलका हुआ होगा न ?"

"भीमसेन इस तरह क्या बोलते हो ? हमारा वंशज गद्दी पर बैठे और हम उन लोगों को सुखी छोड़कर अपने रास्ते लगें, इससे अच्छा और क्या होगा ? कल सुबह तो हम लोग हिमालय पर चलनेवाले हैं, यह तुम जानते ही हो।" द्रौपदी ने कहा।

"द्रौपदी ! तुम जाओ। मेरी तबीयत आज अच्छी नहीं है। इसीसे थोड़ा यहाँ एकान्त में बैठना चाहता हूँ।" भीमसेन बोला।

"क्या हुआ है ? किस विचार में पड़ गये ?" द्रौपदी ने पूछा।

"देवी, एक बात पूछना चाहता हूँ। पूछूँ ?" भीम बोला।

"प्यारे भीमसेन ! आज तुम इस प्रकार क्यों बोल रहे हो ?" द्रौपदी ने कहा।

"आज मुझे किसी तरह भी चैन नहीं पड़ता। हस्तिनापुर का यह राज्य, यह महल, यह बग़ीचा, यह वैभव, सब आज न जाने क्यों मुझे अच्छा नहीं लगता, और थोड़ी-थोड़ी देर में मेरा जी ऐसा मालूम होता है मानों किसी गहराई में उतरता हो। मेरा अपना शरीर ही मुझे भार-रूप मालूम होता है और साँप जैसे केंचुल उतारकर फिर स्वस्थ होजाता है उसी तरह इस शरीर को फेंक-कर कब शान्ति अनुभव करूँ यही मन में आता है।" भीम ने कहना शुरू किया।

"यह तो यों ही, तुम यहाँ बहुत देर से बैठे हो न, इसलिए

इतने विचार आगये। चलो, सब तुम्हारी राह देख रहे होंगे।" द्रौपदी बोली।

"सब कौन ?"

"महाराज युधिष्ठिर, अर्जुन, सहदेव वग़ैरा।"

"देवी ! एक बात कहूँ ? मानोगी ?" भीम ने कहा।

"तुम्हारी बात न मानूँगी तो फिर किसकी मानूँगी ? कहो न !" द्रौपद्री बोली।

"आजतक मैं यह मानता था कि मैं डर जैसी किसी चीज़ को जानता ही नहीं।" भीम कहने लगा।

"ज़रूर ! मेरे भीमसेन के पास डर टिके ही कहाँसे ? यह तो बिलकुल ठीक बात है।" द्रौपदी बोली।

"पर पाञ्चाली ! आज मेरी आँखें खुलीं और मालूम पड़ा कि मैं तो बहुत डरपोक हूँ।" भीम तनकर बैठ गया।

"तुम और डरपोक ! इतने राक्षसों को मारनेवाला, शत्रुओं का संहार करनेवाला, दुःशासन का खून पीनेवाला, दुर्योधन का नाश करनेवाला भीमसेन डरपोक ! यह नया नुसख़ा तुम कहाँसे ले आये ? दिमाग़ फिर गया है क्या, पागल तो नहीं होगये ?" द्रौपदी ने मज़ाक़ करते हुए कहा।

"देवी ! मेरा दिमाग़ बिलकुल नहीं फिरा है। मैं पागल भी नहीं हूँ। मैं ख़ुद ही ऐसा मानता था कि भीमसेन तो डर का भी बाप है। लेकिन देवी, आज मेरी भूल मुझे मालूम होगई है।" भीमसेन ने कहा।

"कैसे मालूम हुई ?"

"आज महाराज युधिष्ठिर ने अपने सिर का राजमुकुट जब परीक्षित के सिर पर रक्खा तब मैं वहाँ मौजूद था। जब महाराज मुकुट उतार रहे थे, मेरी आँखों के सामने मानों दुर्योधन आखड़ा हुआ। दुर्योधन—हाँ, दुर्योधन। उसका सिर खुला हुआ था; उसकी जाँघ में से खून बह रहा था; उसके सिर के दाहिनी ओर मेरी लात के निशान थे। वह आकर मुझे अपनी जाँघ बताने लगा।" भीम बोल रहा था और उसकी साँस फूल रही थी।

"यह क्या कहते हो ? यों तो जब मैं साम्राज्ञी हुई थी उस रात को खुद मुझे भी भानुमती सपने में दिखाई दी थी। लेकिन मैंने तो तुमसे इस बारे में कुछ नहीं कहा।" द्रौपदी बोली।

"देवी ! यह बात नहीं है। दुर्योधन को इस प्रकार देखने के बाद मेरे मन में तरह-तरह की उथल-पुथल हो रही है। कभी मैं द्रोण को देखता हूँ, तो कभी जरासंध सामने आता है, और थोड़ी देर में कौरवपुत्र मेरे सामने आते हैं। इन सबको देखकर मैं डरता नहीं। लेकिन इन सभीको मैंने मारा, यह विचार करते-करते दिल ज़रा गहरे में चला जाता है। तब अन्दर से कोई कहता है—'भीम, और गहरे में मत जा। यह गहराई बहुत भयंकर है।' अन्दर की यह आवाज़ सुनकर मैं उन विचारों से बचने की कोशिश करता हूँ, और फिर से अन्दर नज़र डालते हुए डरता हूँ। इस डर के मारे मुझे ऐसी कँपकँपी आती है जैसी मैंने अपने जीवन में पहले कभी अनुभव नहीं की। मेरी आँखें चढ़ जाती हैं,

शरीर पसीने-पसीने होजाता है, मैं काँपने लगता हूँ। और ऐसा लगता है कि कोई मुझे मार डाले तो ठीक हो।" भीम ने कहा।

"तुम भी बड़े अजीव हो। इन फ़िज़ूल की बातों में अपना दिमाग़ क्यों खराब करते हो?" द्रौपदी बोली।

"देवी! तुम्हारे जीवन में भी कभी ऐसे मानसिक तूफ़ान आये हैं?" भीम ने पूछा।

"आये तो हैं; लेकिन जब आते हैं तब दो घड़ी रो-धोकर मन हलका कर लेती हूँ, और फिर अपने काम में लग जाती हूँ।" द्रौपदी बोली।

"द्रौपदी! मेरे जीवन में तो यह पहला अनुभव है। और अन्तर में डुबकी मारकर जब देखता हूँ, तो जिनका मुझे सपने में भी कोई ख़याल नहीं था ऐसी बुरी-बुरी चीज़ें दीखती और मुझे चकित कर देती हैं। द्रौपदी, मुझे तो यह सारी सृष्टि ही नई मालूम पड़ती है और इस सृष्टि के आगे हज़ार हाथियों के जितनी ताक़तवाला मैं बिलकुल दीन बन जाता हूँ।" भीम दीन बनता हुआ बोला।

"ख़ैर, अभी तो यहाँसे चलो। फिर यहाँ आजाना।" द्रौपदी बोली।

"नहीं, पाञ्चाली! डरते-डरते भी मन में तो यही आता है कि मैं अपने अन्दर दृष्टि डालता ही रहूँ। अंदर न जाने कितना मैल और कूड़ा-करकट जमा होगया होगा। ऐसा करने से वह

बाहर आजायगा और भीमसेन को नई दुनिया का दर्शन करायगा।" भीम बोला।

"पर ऐसा करने से तो पागल हो जाओगे।" द्रौपदी बोली।

"मुझे तो ऐसा लगता है कि ऐसा न करने दोगी तो मैं पागल होजाऊँगा।" भीम बोला।

"पर अभी तो महाराज के पास चलो।" द्रौपदी ने भीमसेन को हाथ पकड़कर उठाया।

"देवी ! चलो चलता हूँ; पर महाराज युधिष्ठिर के सामने भी अपने मन की यह उथल-पुथल कहे बिना मेरे मन को चैन नहीं पड़ेगा।" भीमसेन बोला।

"कल से तो हम सब साथ ही हैं। हिमालय की तरफ़ चलते-चलते रास्ते में यही बातें करेंगे।" द्रौपदी बोली।

"अच्छा, देवी ! तो चलो, चलें।"

भीमसेन खड़ा हुआ और मण्डप में जहाँ सब भाई उसकी राह देख रहे थे, वहाँ जाकर बैठ गया।

× × ×

दूसरे दिन पाँचों पाण्डव और द्रौपदी हिमालय की ओर चल दिये। रास्ते में सहदेव गिरा, नकुल गिरा, पाञ्चाली गिरी और अर्जुन भी गिर पड़ा।

आगे युधिष्ठिर, पीछे भीमसेन और सबके पीछे एक कुत्ता—बस, ये तीन जने चले जारहे थे। इतने में भीमसेन को चक्कर आया और वह बैठ गया।

"महाराज, महाराज ! तुम्हारा भीमसेन भी अब यहीं रुका जाता है।" भीम ने पुकारा।

युधिष्ठिर ने पीछे घूमकर देखा : "भाई भीमसेन ! तुम भी गिर पड़े ?"

"भाईसाहब ! अपने मन की उथल-पुथल मैं आपको बता ही चुका हूँ। आज मैं उसीके वश होकर यहाँ पड़ा हूँ। जो अक़्ल परीक्षित के अभिषेक के दिन आई वह उससे ले आता तो, महाराज, आपके वचनों को मैं ज्यादा समझ सकता। लेकिन भाई-साहब ! मुझे माफ़ करें। मनुष्य के पास अन्तरात्मा जैसी कोई चीज़ भी है, यह मैं कहाँ जानता था ? अगर यह मालूम होता तो द्रोण को मारने के लिए झूठ न बोलता, दुर्योधन की जाँघ में गदा न चलाता, क्षमा के लिए कही हुई आपकी बातों का उपहास न करता, और शत्रुओं की हत्या करके सुख बिताने की इच्छा न रखता। लेकिन महाराज ! मैंने तो अपने बल के अभिमान में दूसरी किसी बात का विचार ही नहीं किया और शरीर बल को ही सब-कुछ माना। आज भीमसेन का यह शरीर अब उसका नहीं रहा।" भीम अत्यन्त दीन होकर बोल रहा था।

"भाई भीमसेन ! व्यर्थ का शोक मत कर ! तुझे जो ठीक लगा वह तूने किया। आज इतनी देर में भी तुझे यह भान हुआ, यही अपना सद्भाग्य समझ। भाई, तेरा कल्याण हो ! तुम सब भाई और पाञ्चाली हमेशा के लिए यहाँ सो गये और मैं अकेला चला जारहा हूँ। मेरे भाग्य में आगे क्या लिखा है, यह ईश्वर ही

जाने। भाई भीमसेन! तुम्हें परमात्मा शान्ति दे।"

युधिष्ठिर आगे चले और भीमसेन का शरीर वहीं पड़ा रह गया।

कुन्ती का पुत्र, दुर्योधन और कौरवों का कट्टर शत्रु, पाण्डवों को अनेक विपत्तियों से छुड़ानेवाला, द्रौपदी का रसिक पति, राक्षसों का संहार करनेवाला, शरीरबल की साक्षात् मूर्ति और हज़ार हाथियों की ताक़त रखनेवाला भीमसेन देवताओं के दरबार में पहुँच गया।

अर्जुन

: १ :

एक लक्ष्य

द्रुपद के दरबार में अपमानित होने के बाद घूमते-फिरते द्रोण हस्तिनापुर आ पहुँचे। हस्तिनापुर के एक कुए के पास राजकुमार खेल रहे थे। उनकी गद उस कुए में गिर गई थी, और वे उसे निकाल नहीं पाते थे। द्रोण ने अपनी अस्त्रविद्या के प्रभाव से कुए में से गेंद बाहर निकाल दी। कुमारों ने यह बात जाकर भीष्म पितामह और महाराजा धृतराष्ट्र से कही, जिसपर विचार कर उन्होंने द्रोण को राजकुमारों को शस्त्रास्त्र-विद्या सिखाने के लिए उनके गुरु के रूप में नियुक्त कर दिया।

उन दिनों गुरु-सेवा विद्यार्थी-जीवन का एक आवश्यक अंग समझा जाता था। विद्यार्थी गुरुकुल में रहते हुए गुरुकुल के छोटे-बड़े सब काम खुद ही कर लेते, और इस प्रकार जीवन में स्वाश्रय की अमूल्य शिक्षा पाते थे। आश्रम में दाखिल होनेवाले नये विद्यार्थी आश्रम की गायों को जंगल में चराने ले जाते, आश्रम के वृक्षों को पानी देते और गुरु के यज्ञ के लिए समिधा माँग लाते। जीवन के ऐसे-ऐसे कामों को पार कर जाने के बाद ही उनका नियमित विद्याध्ययन शुरू होता था। गुरुकुल में ग़रीब-अमीर सभी विद्यार्थियों के साथ एक-सा व्यवहार होता था। यहाँतक कि बड़े-बड़े राजकुमार भी गुरुकुल के लिए लकड़ी काटने या गुरु के

लिए ऐसे-वैसे काम करने में कोई हीनता नहीं समझते थे। गुरु द्रोण का अपना कोई आश्रम तो था नहीं, और राजकुमारों के सिवा दूसरों के लिए उनकी शाला के दरवाज़े बन्द थे; फिर भी कौरव-पाण्डवों को द्रोण की सेवा की शिक्षा तो मिली ही थी।

राजकुमार रोज़ सुबह नहाने और पानी भरने के लिए तालाब पर जाते। पानी भरने के लिए हरेक को एक-एक घड़ा मिला हुआ था।

एक रोज़ भीम और अर्जुन तालाब की ओर जा रहे थे। अर्जुन ज़रा जल्दी-जल्दी पैर उठाकर आगे बढ़ने लगा। यह देख भीमसेन बोला—"भाई अर्जुन! पानी तो मुझे भी भरना है। तू अकेला ही पानी भरने आया है और हम ख़ाली घड़े लेकर वापस जावेंगे, ऐसा तो है नहीं।"

"भीमसेन! तुम धीरे-धीरे आना। मैं तो चलता हूँ। मुझे ज़रा जल्दी है।" अर्जुन ने कहा।

"जल्दी क्या है? और फिर आज तो पढ़ने की छुट्टी है, इसलिए और मौज है।" भीम बोला।

"ऐं········छुट्टी है? यह तो मुझे पता ही नहीं था।" अर्जुन खड़ा रह गया।

"तुझे कैसे मालूम हो? तू तो रोज़ जल्दी-जल्दी नहा-धोकर पानी भरके चला जाता है। न किसीसे बोलना न खेलना, न डुबकियाँ ही लगाता है और न तैरता ही है। तू भला और तेरा अभ्यास भला। भला यह भी कोई बात है? दुनिया में कुछ घूमा-

मस्ती भी तो चाहिए। आज देखना मैं क्या मज़ा करता हूँ। मैं दुःशासन का गला पकड़कर उसे पानी में डुबोऊँगा और फिर उसकी पीठपर ऐसा घोड़ा दौड़ाऊँगा कि हज़रत को नानी-दादी याद आजायगी।"

"भाई भीमसेन! सच बता दूँ? बहुत दिनों से मैं तुमसे बात करने की सोच रहा था, लेकिन कोई मौक़ा ही नहीं मिलता था।" अर्जुन बोला।

"भला ऐसी क्या बात है? कह तो सही।" भीम ने कहा।

"सुनो, हमारे गुरु द्रोण जब हमें पानी भरने के लिए भेजते हैं तब पीछे से अपने पुत्र अश्वत्थामा को चुपचाप विद्या सिखा देते हैं।" अर्जुन बोला।

"लेकिन अश्वत्थामा भी तो हमारे साथ पानी भरने आता है?" भीम की समझ में यह बात नहीं आई।

"आता तो साथ ही है, पर फ़ौरन ही वापस चला जाता है। गुरुजी ने हम सबको तो सकड़े मुंह वाले घड़े दिये हैं और अश्वत्थामा को चौड़े मुँह वाला दिया है, जिससे उसका घड़ा जल्दी भर जाता है और वह हमसे पहले पहुँच जाता है।" अर्जुन ने भीम को समझाया।

"यह बात है! अश्वत्थामा जल्दी जाता है, यह तो मैं भी देखता हूँ।" भीम ने कुछ सोचते हुए कहा।

"और वह सिर्फ़ इसीलिए।" अर्जुन ने कहा, "मैं अच्छी तरह जानता हूँ, इसीसे कह रहा हूँ।"

"तो भाई अर्जुन !" भीमसेन का क्रोध भभक उठा, " ऐसे पक्षपाती गुरु से हमें नहीं पढ़ना। चलो, पितामह से हम यह बात कहें। अश्वत्थामा को हमसे चोरी-छिपे पढ़ाना तो चोरी हुई।"

"भीम भाई !" भीम के कन्धे पर हाथ रखकर अर्जुन ने कहा, "ज़रा धीरे बोलो, नहीं तो ये दुर्योधन वग़ैरा जो जा रहे हैं वे सुन लेंगे। जबसे मुझे अश्वत्थामा सम्बन्धी यह बात मालूम हुई है तभीसे मैं भी जल्दी-जल्दी पानी भरके पहुँच जाता हूँ, जिससे गुरुजी मुझे भी ज़्यादा सिखाने लगे हैं।"

"हूँ......। अब समझा। इसीसे गुरुजी जब-तब कहा करते हैं कि 'अर्जुन सबसे ज्यादा होशियार है।' अब बात समझ में आई। लेकिन हमारी तरफ़ से अश्वत्थामा विद्या में पारंगत हो और चाहे तू भी पारंगत होजा, अपने राम तो मौज से नहा-धोकर घूमामस्ती करके ही आवेंगे। सीखना होगा तो शान्ति से सीखेंगे। द्रोण अगर न सिखावेंगे तो दुनिया में गुरु का कहाँ अकाल पड़ा है ?" भीम बोला।

"भीमसेन ! मेरे लिए तो द्रोण जैसा दूसरा गुरु नहीं है, इसलिए जैसे भी हो वैसे मैं तो उनसे सारी विद्या सीख लेने-वाला हूँ। अस्त्रविद्या में द्रोण जैसे गुरु आज सारी दुनिया में नहीं हैं। इसलिए मैं तो इधर-उधर के पचड़े में पड़े बग़ैर उनसे इस विद्या का रहस्य सीख लेना चाहता हूँ।" अर्जुन बोला।

"अर्जुन ! तेरा विचार तू कर। मुझे तो ऐसे पक्षपाती गुरु की विद्या कम मिले तो भी उसमें मेरा क्या नुक़सान है ? फिर

मुझसे तो पितामह कहते थे कि कुछ दिन बाद तुझे और दुर्योधन को गदायुद्ध की ख़ास तौर से शिक्षा दिलाने के लिए बलरामजी के पास भेजना है।" भीम ने बात का अन्त किया।

"भीमसेन! एक और बात भी तुझे मालूम है?" अर्जुन ने पूछा।

"कौन-सी?"

"वही भीलकुमार वाली?" अर्जुन बोला।

"नहीं तो।" भीम ने कहा।

"कल भीलों के राजा का लड़का एकलव्य गुरु द्रोण का शिष्य बनकर अस्त्रविद्या सीखने के लिए आया था।" अर्जुन ने कहा।

"फिर क्या हुआ?"

"गुरु ने पितामह आदि की सलाह लेकर एकलव्य को शिष्य के रूप में स्वीकार करने से इन्कार कर दिया।" अर्जुन ने कहा।

"ठीक ही किया!" भीमसेन बोला, "भला ऐसे-वैसे भीलों को हमारे साथ कैसे रक्खा जा सकता है? हम तो आख़िर हस्तिनापुर के राजकुमार न हैं!"

"भीमसेन, भीमसेन!" अर्जुन से न रहा गया, "तुम्हारा कहना ठीक नहीं है। हम लोग राजकुमार हैं यह तो सच है; लेकिन उस भीलकुमार को अगर तुमने देखा होता, तो तुम्हारी आँखें निश्चल रह जातीं। रंग तो उसका काला है, लेकिन शरीर उसका कैसा मनोमोहक है! उसके हाथ देखते तो कहते। बड़े-बड़े देवताओं के धनुष भी ऐसे हाथों में पड़ने के लिए तरसते

होंगे। उसकी आँखों में इतनी तीक्ष्णता कि अन्धेरे में भी निशान न चूकें। मुँह पर अडग निश्चय की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। और चेहरे से ऐसा मालूम पड़ता है मानों उसका हृदय अस्त्र-विद्या के लिए कितने ही युगों का भूखा है। मुझे तो उसको देखते ही ऐसा लगा मानों मेरी विद्या उसके सामने कुछ भी नहीं है, और थोड़ी देर के लिए तो मैं गुरु के पीछे छिप गया। बाद में मन कुछ स्वस्थ हुआ। भीम! उसकी गम्भीर चाल को मैं अभी भी नहीं भूल सकता।"

"अर्जुन!" भीम खिलखिलाकर हँसते हुए बोला, "ऐसे तो कितने ही जानवर हस्तिनापुर में रोज़ आते और चले जाते हैं। तू तो पागल है जो ऐसों को याद रखता है। हम लोग जहाँ शिकार के लिए जाते हैं वहाँ ऐसे कितने ही भील मैं तुझे दिखा सकता हूँ। ले चल, अब देर हो रही है। वे लोग पानी में ग़ोते लगा रहे हैं, यह देखकर मेरा हृदय भी उछल रहा है। तू देख, अभी-अभी इस दुःशासन का गला पकड़कर उसे पानी में डुबोता हूँ।"

इस तरह बातें करते-करते दोनों भाई तालाब के किनारे पहुँच गये।

× × × ×

राजकुमारों की परीक्षा का समय नज़दीक आ रहा था। पितामह चाहते थे कि कुमारों ने द्रोणाचार्य से क्या सीखा है यह हस्तिनापुर की सारी प्रजा देखे, और इसके लिए एक आलीशान

मण्डप बना- कर सारी जनता के सामने राजकुमारों की परीक्षा लेने का विचार चल रहा था।

इसी बीच द्रोणाचार्य ने अपने सन्तोष के लिए शिष्यों की परीक्षा करने का विचार किया। एक रोज़ जब सब कुमार अस्त्र-शाला में मौजूद थे, अचानक आचार्य ने ज़ाहिर किया कि "आज मैं तुम सबकी परीक्षा लेनेवाला हूँ।"

सब राजकुमार तैयार होगये और अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर मैदान में आये। मैदान में दूर एक पेड़ पर सफेद रंग का एक नक़ली पक्षी था और लाल रंग के दो रत्नों से उसकी आँखें बनाई हुई थीं।

आचार्य ने राजकुमारों से कहा—"उस पेड़ पर जो पक्षी बैठा है, उसकी आँखें तुम्हें बींधना है।"

राजकुमार तैयार हुए; उनके हाथ तैयार हुए; उनकी आँखें तैयार हुईं; उनके धनुष तैयार हुए; उनके तीर भी तैयार हुए।

आचार्य बोले—"कुमार युधिष्ठिर! सबसे पहले तुम्हारा नम्बर है। देखो, यह मैं खड़ा हूँ; सामने सफेद आसमान है; वह पेड़ है, और उसपर सफेद पक्षी है। तुम इन सबको देख रहे हो?"

युधिष्ठिर खड़े हुए; धनुष-बाण हाथ में लिये और पक्षी की ओर देखकर बोले—"गुरु महाराज! मैं आपको भी देखता हूँ, सफेद आसमान को भी देख रहा हूँ, दूर के उस पेड़ को भी देख रहा हूँ और साथ ही उस नक़ली पक्षी को भी देख रहा हूँ।"

युधिष्ठिर के इस जवाब से खिन्न होकर द्रोण ने कहा, "तुम बैठ जाओ।"

फिर दुर्योधन की बारी आई। "कुमार दुर्योधन! देखो, यह मैं खड़ा हूँ; सामने सफेद आसमान है; वह सामने पेड़ है, और उसपर पक्षी है। तुम्हें ये सब दीखते हैं?"

दुर्योधन ने हाथ में धनुष-बाण लेते हुए जवाब दिया, "गुरुदेव! मैं इन सब भाइयों को देख रहा हूँ, आपको भी देखता हूँ, सफेद आसमान भी देख रहा हूँ, पेड़ को भी देख रहा हूँ और उसपर बैठे हुए पक्षी के सफेद शरीर को भी देख रहा हूँ।"

द्रोण ने हाथ पटकते हुए कहा, "बैठ जाओ।"

फिर भीमसेन खड़ा हुआ और आचार्य के प्रश्न के जवाब में बोला—"गुरुजी! मैं आप सब लोगों को देख रहा हूँ, आकाश को भी देख रहा हूँ, आकाश में जो बड़े-बड़े बादल घूम रहे हैं उनको भी देखता हूँ, पेड़ को भी देखता हूँ, पेड़ के कीटर में बिलाव घूम रहा है उसको भी देख रहा हूँ और पेड़ पर कुछ सफेद-सा जो रक्खा हुआ है उसको भी देख रहा हूँ।"

द्रोण निरुत्तर हुए और भीम को भी बैठा दिया। गुरु ने सबसे पूछा, लेकिन किसीके उत्तर से उनको सन्तोष नहीं हुआ। तब अन्त में अर्जुन की तरफ मुड़े—"बेटा अर्जुन! अब तेरी बारी है। तुझीपर मेरी सब आशाओं का दारोमदार है। इन सबको तो मुझे ज़बरदस्ती पढ़ाना पड़ता है, जबकि तू विद्या का भूखा रोज़ मुझे खोजता हुआ आता है। उठ, तैयार हो। देख यह मैं

खड़ा हूँ; सामने सफेद आसमान है; दूर पर वह पेड़ है, और उसपर पक्षी बैठा हुआ है। तू इन सबको देखता है ?"

द्रोण अपना वाक्य समाप्त कर ही रहे थे कि अर्जुन बोल उठा—"गुरुदेव ! न मैं आपको देखता हूँ न आकाश को, पेड़ भी मुझे नहीं दिखाई देता; मुझे तो सिर्फ वहाँ एक पक्षी दिखाई देता है। तीर चलाने की आज्ञा दीजिए।"

"बेटा अर्जुन !" द्रोण बोले, "हममें से कोई दिखाई नहीं देता ? अकेले पक्षी को ही देखते हो ?"

"महाराज ! अब तो सारा पक्षी भी नहीं दिखाई देता।" अर्जुन ने जवाब दिया, और द्रोण कुछ बोलने ही वाले थे कि अर्जुन फिर बोल उठा—"महाराज ! अब तो पक्षी का सिर भी मुझे नहीं दीखता; सिर्फ दो लाल तारे वहाँ टिमटिमाते हुए दिखाई दे रहे हैं।"

"बेटा, उन्हींको बींध !"

द्रोण के शब्द मुँह से बाहर निकले न निकले कि अर्जुन का तीर सन-सन करता हुआ निकला और पक्षी की आँखों को बींधता हुआ पार होगया।

"शाबाश बेटा, शाबाश ! तू मेरा सच्चा शिष्य है। तुझपर मैं आज बड़ा प्रसन्न हुआ हुआ हूँ। बेटा ! आज मैं तुझे वरदान देता हूँ कि अस्त्र-विद्या में मेरा कोई भी शिष्य तुझसे बढ़कर नहीं हो सकेगा।"

द्रोणाचार्य ने अर्जुन को छाती से लगाया और उसका सिर

सूँघा। चारों भाइयों ने अर्जुन को घेर लिया और ख़ुशी मनाने लगे और कौरव सब एक कोने में इकट्ठे होकर घुस-पुस करने लगे।

× × ×

राजमहल के एक सुन्दर बगीचे में द्रोणाचार्य और दुर्योधन इधर-उधर घूम रहे थे; दुःशासन और कर्ण थोड़ी दूर पर उनके पीछे-पीछे चल रहे थे।

"कुमार दुर्योधन!" द्रोण बोले, "विद्या सिखाने में तुम्हारे और अर्जुन के बीच मैंने कोई भेद नहीं रक्खा। तुम्हें ऐसा लगता हो कि मैंने कोई भेद रक्खा है तो यह तुम्हारा भ्रम है।"

"हम सबको तो ऐसा ही लगता रहा है।" दुर्योधन ने बताया।

"ऐसा मानने का कोई ख़ास कारण भी है?" द्रोण ने पूछा।

"कारण एक-दो नहीं, अनेक हैं। देखिए, आप हम सबको तो दिन में तीर चलाना सिखाते थे, पर अर्जुन को अँधेरी रात में भी तीर चलाना सिखाया। यह सच है न?" दुर्योधन ने पूछा।

"पूरा सच तो नहीं, पर अर्धसत्य ज़रूर है। एक बार अर्जुन अँधेरे में भोजन करने बैठा तब उसका ग्रास इधर-उधर न जाकर सीधा मुँह में ही चला गया, इसपर उसे लगा कि रोज़ की आदत यानी अभ्यास ही जीवन में बड़ी चीज़ है। बस, उस दिन से वह रात के अँधेरे में तीर चलाने का अभ्यास करने लगा। ख़ुद मुझे भी इस बात की बहुत दिन बाद ख़बर लगी। अर्जुन की तरह तुमने भी अगर अभ्यास करना शुरू किया होता तो तुम भी इसी तरह कर सकते थे।" द्रोण ने जवाब दिया।

"दूसरी बात", दुर्योधन द्रोण की ओर देखकर बोला, "यह है कि अर्जुन जब पानी का घड़ा भरकर पहले आजाता तो आप उसे थोड़ी-बहुत रहस्यविद्या सिखाते थे। बोलिए, यह सच है न ?"

"बिलकुल सच।" द्रोण ने निधड़क जवाब दिया।

"यही आपका पक्षपात है। यही अर्जुन के और हमारे बीच आपका पक्षपात है।" दुर्योधन अपने साथियों को कनखियों से देखकर बोला।

"कुमार ! अर्जुन को तुम्हारी बनिस्बत विद्या की भूख ज़्यादा है। वह अपने दूसरे कामों से जल्दी निपटकर विद्या प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहे और इस कारण वह तुम्हारी बनिस्बत ज़्यादा सीख ले, यह स्वाभाविक नहीं है क्या ? अर्जुन की जठराग्नि तुमसे ज्यादा प्रबल है, यह द्रोण का दोष है या तुम्हारा अपना ?" द्रोण ने पूछा।

"गुरुदेव ! विद्या की भूख तो हमें भी अर्जुन जितनी ही थी, लेकिन आपने हमारी उस भूख को प्रोत्साहन कहाँ दिया ? आप तो अर्जुन को देखते ही पागल होजाते थे !" दुर्योधन ने कटाक्ष किया।

"कुमार दुर्योधन ! अपनी विद्या का सच्चा अधिकारी शिष्य मिले तो गुरु का हृदय कितना प्रसन्न होता है, इसका अनुभव मैं तुम्हें कैसे कराऊँ ? मनुष्यमात्र सन्तति के लिए तरसता है, यहाँ तक कि सन्तति के लिए लोग प्राण तक दे देते हैं। पर अधिकारी

शिष्य ही हमारी सन्तति है। सत्पुत्र के प्रति पिता का अधिक प्रेम दोष हो, तो ऐसा दोष द्रोण ने भी ज़रूर किया है।" द्रोण बोले।

"गुरुदेव! इतना ही नहीं। इस अर्जुन की खातिर ही आप भीलकुमार एकलव्य का अँगूठा काटने के लिए खुद गये। परीक्षा के मण्डप में कर्ण कहीं अर्जुन को हरा न दे, इस डर से आपने कर्ण को द्वन्द्व में उतरने ही नहीं दिया। आपके शत्रु द्रुपद को पकड़ने के लिए हम सब साथ गये थे, लेकिन द्रुपद को पकड़ने का श्रेय अकेले अर्जुन को ही मिला। और यह सारी गुरु-दक्षिणा जैसे अकेले अर्जुन ने ही आपको दी हो, इस तरह उसीको आपने अपना ब्रह्मास्त्र दिया। ये और ऐसी छोटी-मोटी अनेक बातें एक साथ मिलाकर देखिए, तब कहिए कि आप अर्जुन का पक्षपात करते हैं या नहीं?" दुर्योधन ने द्रोण की ओर देखा।

"तो कुमार! साफ़ ही कह दूँ?" द्रोण निडर होकर बोले, "अर्जुन के प्रति शुरू से ही मेरा पक्षपात था, है और रहेगा। जिस विद्या की उपासना मैं जीवन-भर करता रहा हूँ, उसका सच्चा अधिकारी तुम सबमें एक अर्जुन ही है। इतना ही नहीं, बल्कि मैं तो यह भी देखता हूँ कि अर्जुन आगे चलकर कहीं मेरा भी गुरु न होजाय। मेरे जैसे ब्राह्मण को अगर विद्या के सच्चे शिष्य न मिलें, तो जीवन-भर हृदय में सन्ताप ही रहा करता है और जीवन के अंत में ब्रह्मराक्षस का अवतार लेना पड़ता है, यह तुम्हें मालूम है? कुमार! मुझे तो तुम्हारी इन बातों में अर्जुन के प्रति तुम्हारे द्वेष के सिवा और कुछ नहीं मालूम पड़ता। कुमार!

याद रक्खो, ऐसे द्वेष से तुम अर्जुन से बढ़कर नहीं होसकते।" द्रोण की आवाज़ में तेज़ी आने लगी।

"आचार्य! आप किससे बातें कर रहे हैं, यह भी ध्यान में है? मैं दुर्योधन हस्तिनापुर का भावी महाराजा हूँ। आप मेरे गुरु हैं, लेकिन आपको मुझे सब-कुछ कहने का अधिकार नहीं है।" दुर्योधन अकड़कर बोला।

"दुर्योधन द्रोणाचार्य को चाहे जो कह सकता है, और द्रोण दुर्योधन को कुछ भी नहीं कह सकता, यह बात है क्या? कुमार! तुम अभी बच्चे हो। आगे से पितामह और धृतराष्ट्र से पूछकर तब मेरे साथ बात करने आना।" द्रोण ने उसे चेताया।

"दुःशासन! चलो। कर्ण! चलो। गुरुजी! आप जितना चाहें अर्जुन के साथ पक्षपात करें। अब हम भी सब विद्या सीख रहे हैं। अब देखूँगा कि यह अर्जुन आपके गुरुत्व को कितना निभाता है।"

यह कहकर दुर्योधन मुँह फेरकर चल दिया। कर्ण और दुःशासन आचार्य की हँसी उड़ाते हुए दुर्योधन के पीछे-पीछे गये।

: २ :

द्रौपदी का स्वयंवर

लाक्षागृह से भाग निकलने के बाद पाण्डव गंगा-किनारे के जंगलों में चले गये। युधिष्ठिर का कुछ समय तक इस तरह घूमने का निश्चय था, जिससे कोई पहचान न सके। जंगलों में भटकते हुए भीमसेन ने हिडिंब राक्षस का वध किया और हिडिंबा के साथ शादी की। आगे बढ़ते हुए वे एकचक्रानगरी में जा पहुँचे। वहाँ पर भीमसेन ने बकासुर को मारकर सारी एकचक्रानगरी को राक्षसों के त्रास से मुक्त किया। परन्तु भीमसेन के ऐसे अद्भुत पराक्रमों से प्रकट होजाने का डर युधिष्ठिर को हमेशा लगा रहता था। इस कारण बकासुर को मारकर तुरन्त ही वे एकचक्रानगरी से भी चले गये। रास्ते में उन्हें द्रुपद राजा की लड़की के स्वयंवर की ख़बर मिली, इसलिए माता कुन्ती तथा पाँचों भाई द्रुपद की राजधानी की तरफ़ चल दिये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने एक कुम्हार के घर डेरा डाला और ब्राह्मण के वेश में अपने दिन काटने लगे। दिन में सब भाई गाँव में से भिक्षा माँगकर लाते और रात को माँ-बेटे किसी तरह सुकड़-मुकड़कर कुम्हार के कोठे में पड़े रहते।

एक दिन चारों पाण्डव भिक्षा लेने गये थे और अकेला अर्जुन कुन्ती के पास रह गया था

कुन्ती बोली—"अर्जुन! इन दो-चार दिनों से तू इस तरह

आलसी होकर क्यों पड़ा रहता है ? भिक्षा लेने के लिए भी नहीं जाता !"

"माँ !" अर्जुन ने जवाब दिया, "जब एकचक्रानगरी में थे तब तो भीम को रोज़ तू अपने पास रखती थी। यहाँ भीम लेने जाता है तो मैं रहता हूँ, ऐसा क्यों नहीं मानती ?"

"एकचक्रानगरी की बात और थी। वहाँ तो मुझे अकेले अच्छा नहीं लगता था और भीम को अगर खुला छोड़ देती तो न जाने क्या उखाड़-पछाड़ करबैठता, पर यहाँ ऐसा कुछ नहीं है। तू सारे दिन टाँग पसारकर पड़ा रहे और अपने भाइयों का लाया हुआ खाये, यह मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगता। तू अपने भाइयों का इतना भी ख़याल नहीं करता ?" कुन्ती बोली।

"माँ ! मुझपर क्या बीत रही है, यह तुम्हें और भाईसाहब को क्या मालूम ?" लेटा हुआ अर्जुन उठकर बैठ गया।

"तुझपर ऐसी क्या बीत रही है, जो मुझे मालूम नहीं ?" कुन्ती ने ज़रा सख़्ती से पूछा।

"तुम कुछ नहीं जानतीं। आज कितने महीनों से इस ब्राह्मण के वेश में छिपकर घूमते फिरते हैं, और कोई पहचान न जाय इस डर से इस कुम्हार के घर में छिपे पड़े हैं। इससे मेरे हृदय को कैसी चोट लग रही है, इसका तुम्हें क्या पता है ?" अर्जुन ने सिर उठाकर कहा।

"मुझे और तुम्हारे बड़े भाई को फ़िलहाल यही आवश्यक मालूम पड़ता है।" कुन्ती बोली।

"माँ ! ऐसा चलतू जवाब क्यों देती है ? इससे तो मुझे और भीमसेन को हिमालय पर ही छोड़कर तू हस्तिनापुर आई होती तो ज्यादा अच्छा होता।" अर्जुन गरम होकर बोलने लगा, "माँ ! बचपन में ऋषि-मुनियों के आश्रम में तुमने अपनी क्षत्राणी की छाती से हमें दूध पिलाया; जब हम पालने में सोते थे तब पाण्डु-पुत्र के रूप में ऊँची भावनायें हमारे अन्दर भरी गईं; हस्तिनापुर के राजमहलों में राजकुमारों के रूप में हम बड़े हुए; भीष्म पितामह, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, विदुर आदि महापुरुषों के वातावरण में हम जवान हुए; द्रुपद जैसे राजा को पकड़कर द्रोणाचार्य के चरणों में हमने भेंट किया। ऐसे तुम्हारे पुत्रों को दुर्योधन की ईर्ष्या के कारण इधर-उधर छिपते हुए मारे-मारे फिरना पड़े तो दिलों में क्या बीतती होगी, इसका तुम्हें कुछ ख़याल आता है ?"

"हाँ, आता है।" कुन्ती बोली।

"नहीं; नहीं आता।" अर्जुन ज़रा गरम होकर बोलने लगा—"अगर यह ख़याल आता होता, तो उस दिन भीम के कहने पर हमें वारणावत से हस्तिनापुर वापस जाने दिया होता; तब दुर्योधन भी जान जाता कि पुरोचन के पाण्डवों को जलाने से पहले दुर्योधन को स्वयं स्मशान-शय्या पर सोना पड़ता है ! माँ, द्रोण को गुरु-दक्षिणा देने के लिए जब हम यहाँ आये तो उस पेड़ के पास हम पाँचों भाई खड़े रह गये थे। दुर्योधन आदि जब हाथ झाड़कर वापस लौट गये, तब हमने द्रुपद पर हमला किया और उसको बाँधकर गुरु के चरणों में ला रक्खा। माँ ! आज जब वह दिन

याद आता है तब हृदय में न जाने क्या-क्या विचार उठते हैं। वही दुर्योधन आदि कल राजकुमार की हैसियत से स्वयंवर में शामिल होने को स्वर्ण के सिंहासनों पर आकर बैठेंगे, और द्रुपद का पराजय करनेवाले तुम्हारे ये वीर पुत्र गरीब ब्राह्मणों के वेश में इधर-उधर धक्के खाते होंगे और जगह पाने के लिए जिस-तिस के निहोरे खायँगे। माँ ! यह बिलकुल असह्य है। ऐसे विचारों से मेरा दिल कितने दिनों से बिंध रहा है। कोई भी काम करने का जब मैं विचार करता हूँ तभी मेरा मन मानों अपंग होजाता है और वह मेरे सारे शरीर को अपंग कर देता है।"

"बेटा अर्जुन !" कुन्ती अर्जुन के पास आई और उसको दिलासा देती हुई बोली, "तेरे मन की व्यथा को मैं जानती हूँ। उसके अन्दर क्या-क्या मंथन चल रहे हैं, इसकी मुझे खबर है। बरसात में आकाश में बादलों का गर्जना सुनकर सिंह का बच्चा दहाड़ता हुआ पर्वतों के साथ सिर टकराकर कैसे मर जाता है, यह क्या मैंने हिमालय के जंगलों में नहीं देखा ?"

"माँ ! अकेले मेरे ही अन्दर ऐसा मन्थन चल रहा हो, सो बात नहीं है। भीम का तो मुझसे भी बुरा हाल है। वह तो कहता था कि अब हमें किसीको भी दो हाथ दिखाकर प्रकट होना ही है।"

"हाँ", कुन्ती ने कहा, "युधिष्ठिर भी कहता था कि अब हमें इस प्रश्न को हल करना होगा।"

"भाईसाहब इसको हल करें या न करें, मैं तो मौक़ा देख रहा हूँ। और ऐसा करते हुए हम प्रकट होजायँ तो इसका भी

मुझे कोई डर नहीं है। दुर्योधन से डरकर हमेशा अँधेरे में भटकते रहना कैसे हो सकता है ? दुनिया तो समझे कि पाण्डव लाक्षागृह में जलकर मर गये, दुर्योधन वग़ैरा ऐसा मानकर मूछों पर ताव देते हुए घूमें और हम अपने शरीरों को बचाते हुए इधर-उधर छिपते फिरें, यह सब अब अर्जुन से नहीं होसकता। माँ! तू आज भाईसाहब से ये बातें कह देना।" अर्जुन ने अपना निश्चय बताया।

"अभी कल तो तुम लोग स्वयंवर में जानेवाले हो। बाद में निश्चिन्ताई से सब बातों पर विचार करेंगे।" कुन्ती ने कहा।

"मैंने तो आज ही तय कर लिया है कि मैं कल स्वयंवर में नहीं जाऊँगा।" अर्जुन बोला।

"स्वयंवर देखने के लिए ही तो ख़ासतौर से यहाँ आये और फिर उसमें न जाना, यह कैसे हो सकता है ?" कुन्ती ने कहा।

"उसमें देखने जैसी क्या बात है, और उसे देखने में क्या रस है ?" अर्जुन ने पूछा।

"बेटा!" अर्जुन के सिर के बाल सँवारती हुई कुन्ती बोली, "रस तो नहीं है यह मैं भी जानती हूँ। देश-विदेश के राजा-महाराजाओं की श्रेणी में बैठनेवाले मेरे ये बेटे दक्षिणा के भूखे ब्राह्मणों की पंक्ति में बैठें, और दूसरे क्षत्रियकुमार जब धनुष-बाण चढ़ाने के लिए तैयारी कर रहे होंगे तब मेरे पुत्र अपने हाथ मलते हुए बैठे रहेंगे, इस दुःख की मैं कल्पना कर सकती हूँ। लेकिन बेटा! कल तो स्वयंवर में ज़रूर जा। तुझे न जाना हो तो भी

तेरी माँ कहती है इसलिए चलाजा। और कभी मैं तुम्हें इस तरह न भेजूंगी। समझा ? तो जायगा न ? जवाब दे।"

"क्या जवाब दूँ ?"

"बस, मुझे यह कहदे कि मैं जाऊँगा। बेटा, तेरी आज की बातों से मुझे बड़ी वेदना हुई है। कल के लिए तो तू मुझे वचन दे दे कि तू वहाँ जायगा।" कुन्ती बोली।

"अच्छा माँ, कल स्वयंवर में चला जाऊँगा। लेकिन वह सिर्फ़ तेरी ख़ातिर।"

"हाँ, मेरी ही ख़ातिर सही।" कुन्ती ने जवाब दिया। अर्जुन उठकर जहाँ कुम्हार अपने गधे का सिंगार कर रहा था वहाँ चला गया और कुन्ती घर के कामों में लग गई।

× × ×

स्वयंवर के मण्डप में असाधारण शान्ति थी। किसी सागर में आया हुआ बड़े ज़ोरों का तूफ़ान जलदेवता के शब्द मात्र से शान्त होजाय, इस प्रकार पहले जहाँ इतना हाहाकार और शोर-गुल मचा हुआ था वहाँ एकदम यह शान्ति कैसी ? सिंहासन से उठकर लक्ष्य-बेध करने जाते हुए जिस जरासन्ध की चाल से धरती डगमगाती थी वही जरासन्ध अपने पैर के अँगूठे से रेशमी गलीचे को क्यों खुरच रहा है ? शिशुपाल का जो सिर उसकी मनोहर गर्दन के ऊपर हमेशा स्थिर रहता था, वह आज सिंहासन के ऊपर क्यों ढल पड़ा ? द्रौपदी के मंडप में प्रवेश करने से पहले जो दुर्योधन प्रवेश-द्वार की ओर एकटक देख रहा

था वह अब अपने हाथ के नाखूनों को ही क्यों देख रहा है ? इन बैतालिकों के सुर क्यों बंद होगये ? इन ब्राह्मणों के आशीर्वचन बीच में ही क्यों रुक गये ? धृष्टद्युम्न की सिंह-गर्जना क्यों शान्त होगई ? द्रुपद का चेहरा पीला क्यों होगया ? द्रौपदी की मदमाती सखियों की नूपुर-झंकार क्यों बंद होगई ? वहाँ दूर बलराम के साथ बैठे हुए श्रीकृष्ण की आँखें चंचलता से अपने एकमात्र अभिन्न सखा को तलाश करती हुई अस्थिर क्यों हो उठी हैं ?

हिमालय की किसी गुफा में जहाँ अर्से से शान्ति का वास हो और सिंह अपनी एक ही गर्जना से उस शांति को चीर डाले, इस तरह इस सभा की शान्ति को भङ्ग करता हुआ द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न बोला—"भारतवर्ष के राजाओ ! आप सब लोग जानते हैं कि मेरी यह बहन द्रौपदी यज्ञ में से उत्पन्न हुई है। आप लोग यह भी जानते होंगे कि ईश्वर के किसी गूढ़ संकेत के अनुसार ही इसका जन्म हुआ है। मेरी बहन हमारे देश के वीर क्षत्रियों के जीवन को उज्ज्वल करे, इस ख़याल से मेरे पिता ने इस स्वयंवर का आयोजन किया है। आप सब दूर-दूर के देशों से इस स्वयंवर में पधारे हैं, इसके लिए मैं फिर से आपका आभार मानता हूँ। लेकिन आप लोगों के यहाँ आने का हेतु सिद्ध नहीं हुआ। इससे मेरा हृदय बहुत दुःखी है। जरासंध और शिशुपाल जैसे शूरवीर भी इस धनुष को न झुका सके, यह देखकर किस-को दुःख न होगा ? अपनी असफलता से आप सबको भी कितना दुःख होरहा है, यह आप लोगों के चेहरों से ही दीख

रहा है। अब तो मुझे यह भय होरहा है कि शायद इस सारे मंडप में मेरी बहन के हाथ का अधिकारी कोई क्षत्रिय-पुत्र मौजूद नहीं है! पर मुझे अपनी बहन का दुःख नहीं है। वह तो योग्य पति के अभाव में आजीवन ब्रह्मचारिणी रहने के लिए तैयार है। लेकिन······इतने बड़े मानव-समुदाय में इस धनुष को लेकर लक्ष्य-वेध करनेवाला एक भी क्षत्रिय वीर न निकला, यह देखकर मेरा हृदय जलकर खाक हुआ जाता है। हम सब लोग क्षत्रिय-पुत्र हैं। वीरता ही हम लोगों का ईश्वर-प्रदत्त अधिकार है। हमने उस वीरता को—उस अधिकार को खो दिया है, इसका मुझे दुःख है। हे राजा-महाराजाओ! सुनो, अभी भी आपमें कोई वीर पुत्र दबा-छिपा रह गया हो तो बाहर आजाय और यज्ञ की वेदी में से उत्पन्न हुई मेरी इस बहन को स्वीकार करने की अपनी योग्यता का परिचय दे।"

कुमार धृष्टद्युम्न के मुँह से ये शब्द पूरी तरह बाहर निकलने भी नहीं पाये थे कि दूर बैठे हुए ब्राह्मणों की मण्डली में से एक पुरुष उठ खड़ा हुआ। उसके खड़े होते ही ब्राह्मणों की मण्डली में कोलाहल मच गया।

एक ने कहा, "अरे भाई! हम लोग तो ब्राह्मण हैं। यह काम हमारा नहीं है।"

दूसरे ने कहा, "ब्राह्मण हैं तो क्या हुआ? सूतपुत्र तो नहीं हैं? परशुराम क्या ब्राह्मण नहीं थे? हस्तिनापुर के द्रोण ब्राह्मण नहीं हैं? जाओ भाई, अच्छी तरह जाओ।"

तीसरा बोला, "अरे ओ भाई ! बैठ जा, बैठ जा; शल्य जैसों का वहाँ बस नहीं चला तो तेरे से क्या होना है ? उलटे हँसी होगी और साथ में दक्षिणा भी मारी जायगी।"

महासागर की प्रचण्ड लहरों के निरन्तर टकराते रहने पर भी अचल पहाड़ जैसे खड़ा रहता है उसी प्रकार इस कोलाहल के बीच वह पुरुष खड़ा रहा। कुछ देर पहले राजा-महाराजाओं की जो आँखें निश्चेष्ट हो रही थीं, वे भी सहसा इस कोलाहल की ओर फिरीं।

इस पुरुष को आपने पहचाना ? उसके चेहरे पर शुद्ध क्षत्रियत्व की छाप थी, उसकी आँखों में अनेक दिनों के अज्ञात-वास पर रोष भरा हुआ था। बैल के समान उसके कन्धे थे, विशाल छाती थी, लोहे के मोटे सरियों के समान उसके हाथ थे और सिंह-जैसी उसकी चाल थी। इस पुरुष को आपने पहचाना ? वह है लाक्षागृह में से जलते-जलते बच जानेवाला, जंगलों के अनेक दुःखों में भीमसेन का साथी, अज्ञातवास से ऊबा हुआ, कुम्हार के घर में ब्राह्मण के वेश में रहनेवाला कुन्ती का विचला पुत्र अर्जुन। कुमार धृष्टद्युम्न के वचन उसके कानों में चुभे और उन शब्दों से उसकी वीरता मानों घायल होकर जागृत होगई।

सारा मण्डप अपनी मूर्च्छा में से जागृत होकर अर्जुन की आर देखे, इतने में तो वह धनुष के पास पहुँच गया और उसे हाथ में लेकर टंकार किया। धनुष की यह टंकार सभाजनों के

कानों तक पहुँचे, उससे पहले ही अर्जुन ने निशान पर तीर चलाया और उसे बींध दिया। ब्राह्मणों ने और धृष्टद्युम्न ने जय-जयकार किया, और लोग आँख उठाकर उधर देखें इतने में तो द्रौपदी की वरमाला अर्जुन के गले में जा पहुँची।

राजा-महाराजाओं के आश्चर्य का तो ठिकाना ही न रहा। "यह क्या जादू का कोई खेल है ? हम सब सपना देख रहे हैं या सब सच है ?" सब एक दूसरे की ओर देखने लगे और खुद कहीं बदल तो नहीं गये हैं इसका निश्चय करने के लिए वे अपने शरीर और वस्त्राभूषणों पर इधर-उधर हाथ फेरने लगे।

उस बीच, भीम छलांग मारकर अर्जुन के पास आपहुँचा और युधिष्ठिर भी नकुल, सहदेव के साथ आकर उसके पास खड़े होगये। द्रुपद राजा की आँखों में प्रेमाश्रु भर आये, और अपनी प्यारी बेटी को छाती से लगाकर अर्जुन के पास आ खड़े हुए। कुमार धृष्टद्युम्न इन सबको लेकर दरवाज़े की ओर चलने लगा।

अचानक घायल शेर की तरह गरजकर जरासन्ध ने कहा— "ठहरो ! धृष्टद्युम्न, ठहरो ! यहाँ आये हुए राजा-महाराजाओ ! सुनो। द्रुपद ने हम सब लोगों को इस स्वयंवर में निमंत्रण देकर बुलाया और अब हमीं लोगों के सामने वह अपनी लड़की एक उठाईगीरे को देकर हमारा भारी अपमान कर रहे हैं। हमें इस अपमान का बदला द्रुपद से ज़रूर लेना चाहिए। या तो द्रुपद राजा स्वयं ही अपनी पुत्री को हममें से किसीको देदें, नहीं तो हम लोगों को चाहिए कि हम सब मिलकर उसके साथ युद्ध करें

और इस क्षत्रियकुमारी को क्षत्रिय-कुल से बाहर जाने से रोकें।"

जरासन्ध के चुप होते ही चेदिराज शिशुपाल उसका समर्थन करता हुआ बोला—"जरासंध जो कहते हैं वह बिलकुल ठीक है। भारतवर्ष के इतने बड़े राजा-महाराजाओं में से द्रुपद को कोई पसन्द न आया, और अन्त में एक ब्राह्मण को अपनी लड़की दी। अरे ओ ब्राह्मण! इस द्रौपदी का हाथ छोड़ दे। धृष्टद्युम्न इस शहर की किसी अच्छी ब्राह्मणी से तेरी शादी करा देंगे। यह द्रौपदी तो किसी महाराजा के अंतःपुर की शोभा बढ़ाने के लिए पैदा हुई है, तेरे घर भीख माँगकर लाये हुए आटे की रोटियाँ बनाने के लिए इसका जन्म नहीं हुआ।"

कर्ण को भी ठीक मौक़ा मिल गया: "बिलकुल ठीक है। द्रुपद की पुत्री किसके साथ ब्याह करे, यह तय करने का काम हम लोगों का है। द्रुपद अगर सीधी तरह न मानें, तो मैं अकेला उसके साथ युद्ध करने के लिए तैयार हूँ। इस तरह का घोर अपमान सहकर कौन वीर अपने घर जायगा?"

जरासंध आदि की ऐसी तीव्र और जोशीली बातें सुनकर और राजाओं की भी बहादुरी जागृत हुई। कोई म्यान में से तलवार निकालने लगे; कोई अपने रथ बाहर तैयार हैं या नहीं यह देखने लगे; कोई अर्जुन को देखकर दाँत किटकिटाने लगे, तो कोई मन में द्रौपदी को ही भला-बुरा कहने लगे।

दूसरी ओर ब्राह्मण आनंद से नाचने लगे, और उनमें जो जवान थे वे लड़ने के लिए भी तैयार होगये।

कुन्ती-पुत्र अर्जुन, इस बीच, इस सब विरोध की ज़रा भी परवा न करते हुए द्रौपदी के साथ अपनी धीर गति से दरवाज़े की तरफ़ चला जा रहा था, मानों कोई मस्त हाथी कुत्तों के भोंकने की परवा न करते हुए अपनी सूँड को हिलाता हुआ जारहा हो!

बेचारे द्रुपद तो यह सब देखकर एकदम सन्न रह गये। "बेटा धृष्टद्युम्न! बेटी द्रौपदी कहाँ गई? मेरी बेटी ने जिसे वर-माला पहनाई, मैं तो उसका नाम भी नहीं जानता। बेटा! तू इन राजाओं को शान्त कर। ये सब अगर हमारे साथ युद्ध करने लगेंगे तो मैं क्या करूँगा? बेटी द्रौपदी! ज़रा खड़ी तो रह।"

इस प्रकार बोलते हुए द्रुपद अर्जुन के पीछे पहुँचे और द्रौपदी से कहने लगे—"बेटी द्रौपदी! तुझे अपने योग्य पति तो मिला, लेकिन तेरे इस पिता के तो दुःख का पार नहीं है। ये सब राजा-महाराज मुझे और तेरे भाई को किस तरह धमका रहे हैं, यह तू सुन रही है न?" बोलते-बोलते द्रुपद की आँखों में पानी भर आया।

अर्जुन ने द्रुपद को सान्त्वना देते हुए कहा—"महाराज! आपको ज़रा भी घबराने की ज़रूरत नहीं। मैं अकेला ही इन सब राजा-महाराजाओं के साथ युद्ध करने को तैयार हूँ। आप सब यहाँसे हट जाइए।"

अर्जुन बोल ही रहा था, इतने में भीम आगे आया—"महाराज द्रुपद! अब आप सब तमाशा भर देखें। इन सब महाराजाओं को द्रौपदी नहीं मिली तो क्या, मेरे हाथ का मज़ा ही ज़रा उन्हें चख लेने दें। आप ज़रा भी चिन्ता न करें।"

यहाँ इस तरह की बातें होही रही थीं, इतने में क्रोध से भरे हुए शिशुपाल आदि राजा वहाँ आपहुँचे और मानों एक-दूसरे को युद्ध का आवाहन करते हों इस प्रकार सब बाहर निकल पड़े।

नकुल और सहदेव को लेकर युधिष्ठिर अपने मुकाम पर चले गये, इधर अर्जुन और भीम राजाओं से लड़ने में लगे। अर्जुन ने स्वयंवर वाला धनुष हाथ में लेकर कर्ण के सामने मोरचा बाँधा और उसे घायल करके लड़ाई में से भगा दिया। भीमसेन पास के एक पेड़ को उखाड़ लाया और सबसे भिड़ पड़ा। उसने जरासंध, शिशुपाल, शल्य आदि को मार भगाया। अर्जुन और भीमसेन का यह युद्ध थोड़ी देर तो अच्छी तरह चला; पर कोई भी राजा ज़्यादा देर तक उनका सामना नहीं कर सका, और एक के बाद एक सब अपने-अपने मुक़ाम को चले गये।

अन्त में मानों सब राजा-महाराजाओं की इज़्ज़त बचा रहे हों इस प्रकार एक राजा कहने लगा, कि "जो पुरुष इतने राजाओं के सामने अकेला टिक सकता है और कर्ण जैसों को घायल करके मार भगाने की हिम्मत रखता है, वह अवश्य क्षत्रिय वीर होना चाहिए। द्रौपदी सच्चे क्षत्रिय से ही ब्याह करे, यही हम चाहते थे। हमें विश्वास होगया है कि यह जो-कुछ हुआ है वह ठीक ही हुआ है। इस कारण अब इस युद्ध को ज़्यादा बढ़ाने की ज़रूरत नहीं है।"

संग्राम में शत्रुओं के अपनेआप अदृश्य होजाने पर अर्जुन और भीमसेन द्रुपद की आज्ञा लेकर अपने डेरे की ओर चलने

लगे। पाञ्चाल-पुत्री उनके पीछे-पीछे चली जा रही थी।

अपनी प्यारी बहन को पहुँचाकर वापस लौटते हुए धृष्टद्युम्न मन में गुनगुनाया, "ये लोग कौन होंगे? कहाँ जा रहे होंगे? वीर धृष्टद्युम्न की बहन किनके पाले पड़ी? मेरे शहर में तो किसी ब्राह्मण के ऐसे पुत्र हैं नहीं। समझ में नहीं आता कि ईश्वर की क्या माया है!"

: ३ :

अर्जुन का बनवास

द्रौपदी के साथ पाँचों पाण्डवों का ब्याह होगया और श्रीकृष्ण भात देकर द्वारिका चले गये। तब धृतराष्ट्र के बुलाने पर पाण्डव वापस हस्तिनापुर गये और वहाँसे थोड़ी ही दूर इन्द्रप्रस्थ में अपनी राजधानी स्थापित करके रहने लगे। कुन्ती तथा द्रौपदी भी उनके साथ ही रहतीं थीं।

एक बार भगवान् नारद इन्द्रप्रस्थ आये। महाराज युधिष्ठिर ने अर्घ्यादि से उनकी पूजा की और पाँचों भाई तथा द्रौपदी उनके चरणों के पास आकर बैठ गये।

"महाराज युधिष्ठिर! सब ठीक तो है न?" नारद ने पूछा।

"मुनिराज! यहाँ पधारकर आज आपने मुझपर बड़ा अनुग्रह किया है।"

"पाञ्चाल-पुत्री! इन्द्रप्रस्थ का जीवन तुम्हें अनुकूल पड़ा या नहीं?" द्रौपदी की ओर देखकर नारदजी बोले।

"महाराज! ऐसा प्रश्न आप क्यों कर रहे हैं?" द्रौपदी ने सहज ही शरमाते हुए कहा।

"बेटी द्रौपदी! ख़ासतौर से इसलिए, कि विवाह होने के पहले विवाहित जीवन जितना मनोहर मालूम होता है उतना मनोहर विवाहित जीवन की पहली रात बीतने के बाद नहीं मालूम पड़ता,

ऐसा मनुष्यों का अनुभव है।" नारद ने जवाब दिया और युधिष्ठिर से पूछा, "क्यों युधिष्ठिर ! ठीक है न ?"

"मुनिराज ! आपकी बात तो बिलकुल ठीक है। लेकिन ईश्वर की कृपा से हम भाइयों में इतनी एकता है, और पाञ्चाल-पुत्री इतनी शील-सम्पन्न हैं कि हमारे व्यवहार में ज़रा भी कटुता पैदा नहीं होती।" युधिष्ठिर बोले।

"यह तुम लोगों का सद्भाग्य है।" नारद जी ने कहा, "फिर भी युधिष्ठिर ! एक सलाह देना चाहता हूँ।"

"सलाह क्यों, आपको तो आज्ञा देने का अधिकार है।" युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर पूछा, "कहिए, क्या आज्ञा है महाराज ?"

"तुम सब आजतक माता कुन्ती के स्नेह की शीतल छाया में बड़े हुए हो और खाते-पीते, सोते-बैठते एकसाथ रहे हो, इसलिए तुम्हारे अन्दर फूट पड़े यह डर तो नहीं है।" नारद जी बोले।

"फिर क्या बात है, महाराज ?" युधिष्ठिर बीच ही में बोल उठे।

"फिर भी," नारद अपनी बातें जारी रखते हुए बोले, "काम-वासना बुरी चीज़ है।"

"पर हमारे अन्दर फूट किस तरह पड़ जायगी ?" भीमसेन बोला।"

"भीमसेन ! तुम जो कहते हो वह ठीक है, पर काम जब फूट डालने की शुरुआत करता है तब वह मनुष्य की आँखों में ज़हर आँज कर दूर हट जाता है। फिर तो सब-कुछ वह ज़हर वाली

दृष्टि खुद ही कर लेती है।" नारद जी ने खुलासा किया।

"लेकिन हम लोग उसको कारण दें तब न ?" भीमसेन बोला।

"कामदेव ने एक बार आँख में ज़हर डाला कि बस फिर तो एक ज़रासे तिनके से भी हलके और क्षुद्र कारण वेदों से भी ज्यादा वज़नी मालूम होने लगते हैं, और नित्य-प्रति साथ-साथ खाने-पीने, उठने-बैठने वाले एक माँ के जाये दो सगे भाइयों में भी फूट डाल देते हैं। और फूट भी ऐसी कि जिसमें एक-दूसरे की जान तक ले लेने को तैयार होजाते हैं।" नारद जी ने विस्तार से कहा।

"तो आपकी क्या आज्ञा है ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"इसलिए," नारदजी ने गम्भीरता के साथ कहा, "मेरी ऐसी सलाह है कि तुम्हारी आँखों में द्रौपदी के कारण ऐसी तब्दीली आवे उससे पहले तुम्हें द्रौपदी के साथ के अपने सम्बन्धों को व्यवस्थित कर लेना चाहिए।"

"किस तरह की व्यवस्था करने से, आप समझते हैं, हम लोगों में आपस में प्रेम बना रह सकता है ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"तुम पाँचों भाइयों को एक प्रकार की प्रतिज्ञा के बन्धन में बंध जाना चाहिए।"

"कैसी प्रतिज्ञा ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"तुम्हें ऐसा सख़्त नियम बना लेना चाहिए कि जब तुममें से कोई द्रौपदी के साथ एकान्त में बैठा हो तो दूसरा वहाँ न जाय।" नारदजी ने कहा।

"महाराज ! मुझे आपकी आज्ञा स्वीकार है।" युधिष्ठिर ने जताया।

"इस प्रकार नहीं जाना चाहिए, यह तो मुझे भी मंजूर है। लेकिन मान लो कि कोई वहाँ चला गया, तो ?" भीम ने पूछा।

"तो फिर उसे प्रतिज्ञा-भंग का प्रायश्चित्त करना चाहिए।" नारदजी ने कहा।

"अगर धर्म-बुद्धि से प्रतिज्ञा का पालन करना हो, तो उसको भंग करने का विचार ही नहीं उठता। फिर भी अगर हमारी कमज़ोरी से उसका भंग होजाय तो उसकी शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त तो करना ही चाहिए। क्यों ठीक है न अर्जुन ?" युधिष्ठिर बोले।

"ज़रूर ! प्रतिज्ञा तो प्रतिज्ञा ही है। अपना सिर देकर भी उसका पालन करना चाहिए। यही हमारा निश्चय हो। अगर उसे न पालना हो तो न लेना ही ठीक है। और अगर लेना है तो उसे छोड़ना नहीं चाहिए।" अर्जुन बोला।

"लेकिन अगर हम प्रतिज्ञा न लें पर मन में यह सब दृढ़ निश्चय करलें कि हम इस प्रतिज्ञा के अनुसार ही अपना आचरण रक्खेंगे, तो कैसा रहेगा ?" सहदेव ने प्रश्न किया।

धर्मराज युधिष्ठिर बोले—"भाई सहदेव ! तुम जो कहते हो वह ठीक नहीं है। मनुष्य चाहे जितना दृढ़ हो, फिर भी है तो वह हाड़-मांस का पुतला ही। मनुष्य कितनी ही दृढ़ता से निर्णय करे फिर भी उसकी गहराई में खोखलापन रही जाता है; इस कारण ऐन मौके पर मनुष्य का निर्णय इस तरह टूट जाता है कि

जिसकी वह कल्पना भी नहीं कर सकता और वह कहीं-का-कहीं जा गिरता है। मनुष्य के हृदय की गहराई में इस प्रकार का खोखलनापन न रहने देना हो, तो प्रतिज्ञा लेना ही एक मार्ग है।"

"तो ठीक, मैं प्रतिज्ञा लेने को तैयार हूँ।" सहदेव बोला।

"भगवान् नारद जहाँ उपस्थित हों वहाँ मैं भी प्रतिज्ञा लेने के लिए तैयार हूँ।" भीम ने कहा।

"तो महाराज युधिष्ठिर! सबसे पहले तुम प्रतिज्ञा लो और बाद में ये चारों भाई।" नारदजी बोले।

धर्मराज युधिष्ठिर नारदजी को नमन करके खड़े हुए और हाथ की अञ्जलि में पानी लेकर बोले: "हम पाँच भाइयों में से किसी एक के साथ एकान्त में अगर द्रौपदी बैठी हो तो वहाँ मैं नहीं जाऊँगा, और गया तो मुझे बारह वर्ष का वनवास भोगना होगा। भगवान् नारदजी को साक्षी रखकर मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ।"

इतना कहकर युधिष्ठिर ने अञ्जलि का जल छोड़ दिया और बैठ गये।

उसके बाद क्रमशः भीमसेन, अर्जुन, सहदेव और नकुल ने इसी प्रकार प्रतिज्ञा ली। पाण्डवों की प्रतिज्ञा लेने की विधि समाप्त होजाने के बाद नारदजी सबको आशीर्वाद देकर वहाँसे विदा हुए।

× × ×

"भाई अर्जुन! तुम ऐसे ज़रा से कारण से हम लोगों को छोड़-कर जाते हो, यह मुझसे देखा नहीं जाता।" युधिष्ठिर ने कहा।

"भाई साहब! आप क्या कहते हैं? ज़रा-सा कारण है? अभी

कल ही तो हम लोगों ने प्रतिज्ञा ली है—और वह भी नारदजी जैसे मुनि की उपस्थिति में, और आज ही उस प्रतिज्ञा का भंग करें तो कैसे चलेगा ?" अर्जुन बोला।

"लेकिन अर्जुन ! तुमने प्रतिज्ञा का भंग किया ही नहीं।" युधिष्ठिर ने कहा।

"भाईसाहब ! अच्छे-अच्छे आदमी भूल कर जायँ ऐसे संकट के प्रसंगों में भी आपकी धर्मबुद्धि जागृत रहती है। पर आज मैं देखता हूँ कि मेरे प्रति आपका जो स्नेह है वह आपको भुलावे में डाल रहा है।" अर्जुन बोला।

"अर्जुन ! चोर ब्राह्मणों की गायों को लेगये थे। उन्हें वापस लाने के लिए मैं और द्रौपदी जहाँ बैठे हुए थे वहाँ आने के सिवा तुम्हें कोई चारा ही न था। क्योंकि जिस कमरे में हम बैठे हुए थे उसीमें हम लोगों के सब शस्त्रास्त्र रक्खे हुए थे। ब्राह्मणों की गायों की रक्षा करने के लिए तुम शस्त्रों को लेने कमरे में दौड़े आये। उससे तो हमारे क्षत्रिय-धर्म की रक्षा हुई है। इस कारण तुम्हें जो अन्दर आना पड़ा उससे क्या हमारे राजधर्म का पालन नहीं हुआ ? इसमें हमने जो प्रतिज्ञा ली है उसके अक्षरों का तो भंग हुआ होगा, लेकिन उसकी भावना की तो रक्षा ही हुई है।" भीमसेन बोला।

"भाई भीमसेन ! हमारी प्रतिज्ञा के अक्षरार्थ और भावार्थ की जो कल्पना तुम्हारे ध्यान में है वह मेरे भी ध्यान में है। पर मैं तो सिर्फ एक ही बात जानता हूँ। वह यह कि जब हम लोगों ने

प्रतिज्ञा ली,उस समय ऐसे प्रसंगों का अपवाद उसमें शामिल नहीं किया था।" अर्जुन ने कहा।

"वह तो उस समय सूझा नहीं था इसलिए।" भीमसेन बोला।

"प्रतिज्ञा सचमुच जीवन की एक बड़ी गम्भीर बात है, और जीवन की उन्नति के लिए उसका ठीक-ठीक उपयोग करना हो तो मनुष्य को प्रतिज्ञा लेने से पहले ही उसके चारों ओर जितनी बाड़ वग़ैरा लगानी हों लगा लेनी चाहिए।" अर्जुन ने कहा।

"लेकिन उस समय न सूझे तो।" युधिष्ठिर ने पूछा।

"उस समय न सूझे तो फिर प्रतिज्ञा तोड़ने के प्रायश्चित्त से बचने के बहाने खोजने के बजाय प्रतिज्ञा-भंग के प्रायश्चित्त का खुशी से स्वागत करना चाहिए। भाईसाहब! धर्म का यह रहस्य तो आपने ही हमें सिखाया है, फिर आज स्नेह के वश होकर इस तरह क्यों बोल रहे हैं?" अर्जुन ने पूछा।

"अर्जुन! आज तूने मुझे हरा दिया। तू खुशी से जा भाई! देवता तेरी रक्षा करें।" यह कहकर युधिष्ठिर ने अर्जुन का सिर सूँघा और आशीर्वाद दिया।

"देवी! आज्ञा चाहता हूँ।" अर्जुन ने द्रौपदी से विदा माँगी।

"शब्दों में व्यक्त न होनेवाले ऐसे स्नेह-तन्तु से तुमने मुझे बाँध लिया है। आज उस तन्तु की खींचतान से मुझे आघात पहुँचता है। मैं तुम्हारे बनवास का निमित्त बनी, मन में यह विचार आने पर हम लोगों का भविष्य मेरी नज़रों के सामने खड़ा होजाता है

और तुम लोगों को मैं न जाने कैसे-कैसे दुःखों में तपाने का कारण बनूँगी, इस विचारमात्र से मेरा जी भारी होजाता है।" यह कहते-कहते द्रौपदी गद्गद् होगई।

"देवी! जी छोटा न करो। जीवन की कड़वी घूंटों में भी ईश्वर किस तरह अमृत छिपा रखता है, यह किसे मालूम है?" अर्जुन बोला।

"अर्जुन! जाओ! जगदम्बा तुम्हारी रक्षा करें।" द्रौपदी ने बिदाई दी।

"भीमसेन! जाता हूँ।"

"अर्जुन! तू तो चला, लेकिन मेरी जोड़ी जो टूट रही है!" भीम बोला।

"भीमसेन! हम लोग महीनों से ऐसी यात्रा का विचार तो कर ही रहे थे। गुरु द्रोण ने हमें अस्त्र-विद्या तो सिखाई, लेकिन राजकुमार को शोभा देने योग्य देश-परिचय तो बिलकुल दिया ही नहीं।" अर्जुन बोला।

"बेचारे द्रोण ने स्वयं ही देश का दर्शन कहाँ किया है?" भीम ने कहा।

"आज देश-परिचय प्राप्त करने का सौभाग्य पहले मुझे मिल रहा है, इससे आनन्द होता है। भीमसेन! महाराज युधिष्ठिर को भारतवर्ष के चक्रवर्ती पदपर स्थापित करने के स्वप्न तो तुम और मैं दोनों देखते हैं। लेकिन हमने भारत के अनेक भागों का भ्रमण तो किया ही नहीं है। देश-देशान्तर के वृक्ष, पत्ते,

नदी, समुद्र, पहाड़ आदि तो देखे ही नहीं हैं। भारत के भिन्न-भिन्न मनुष्यों को देखा नहीं है, उनके अनेक समाजों, उनके रीति-रिवाज, धर्म, स्थिति आदि को हम जानते ही नहीं हैं। हस्तिनापुर की अस्त्रशाला की खिड़कियों के चारों ओर जो दुनिया दिखाई देती है उससे विशाल दुनिया चारों ओर मौजूद है, उसका प्रत्यक्ष दर्शन तो हमने किया ही नहीं है। इस तरह हम भारतवर्ष के हृदय पर किस प्रकार साम्राज्य स्थापित कर सकेंगे?"

"अर्जुन! तेरी बातें तो वहुत ठीक हैं। तो मुझे भी साथ लेता चल न?" भीम ने कहा।

"आज नहीं। तुम अगर यहाँ न रहोगे तो भाईसाहब को दिक्क़त होगी। योंतो हम लोग साथ ही निकलने का विचार करते थे, लेकिन मुझे ऐसा मौक़ा जो मिल गया है उसमें बारह वर्ष में जितना हो सकेगा उतना भ्रमण मैं कर लेना चाहता हूँ। मैं जब वापस आऊँगा तब फिर तुम्हारी बारी आयगी।" अर्जुन ने जवाब दिया।

"अच्छा भाई, जा। लोकपाल तेरी रक्षा करें।" भीम ने आशीर्वाद दिया।

"भाई नकुल, सहदेव! मैं जाता हूँ।" अर्जुन ने उनसे विदा माँगी।

"भाईसाहब! हम आपसे क्या कहें? आपके बिना हमें तो सब सूना-सा लगेगा। जल्दी ही वापस आना। देश-विदेशों में जो-कुछ नई चीज़ें दीखें वे हमारे लिए लेते आयें।" दोनों ने अर्जुन को नमस्कार किया।

यह हो ही रहा था, इतने में माता कुन्ती भी वहाँ आपहुँची। अर्जुन ने कुन्ती के पास जाकर सिर नवाया : "माता, आज्ञा दो!"

आँखों के आँसू पोछती-पोछती कुन्ती बोली—"बेटा अर्जुन! इस आख़िरी समय में दुःख मानने से क्या होगा? अभी ठिकाने से थोड़ो देर शान्ति से बैठ भी नहीं पाये थे कि फिर बारह वर्ष का बनवास! तेरा जीवन क्या इस बनवास के ही लिए बना है? ख़ैर, जा बेटा! जा। अब तेरा यह वल्कल मुझसे नहीं देखा जाता। देवराज इन्द्र तेरी रक्षा करें।"

धड़कते हुए हृदय और काँपते हुए हाथों से कुन्ती ने अर्जुन का सिर अपनी छाती से चिपटाया, सूँघा और उसे आशीर्वाद दिया। थोड़ी देर के लिए उसे चक्कर-सा आने लगा, लेकिन तुरन्त ही वह सावधान होगई। और सबसे विदा लेकर और सबको धीरज बँधाते हुए, सबके हृदय में न जाने क्या-क्या विचार जगाता हुआ और सबको स्नेह की निगाह से देखता हुआ, अर्जुन बारह वर्ष के बनवास को निकल पड़ा।

: ४ :

"यह कैसा कुलधर्म ?"

इन्द्रप्रस्थ के महल में एक कमरे के अन्दर बैठे हुए द्रौपदी और अर्जुन बातें कर रहे थे। अर्जुन के सामने की दीवार पर एक बड़ा शीशा टँगा हुआ था।

"देवी पांचाली ! अब तो तुम्हारा मन ख़ुश है न ?" अर्जुन ने पूछा।

"प्यारे अर्जुन ! आज बारह वर्ष बाद अपने अर्जुन को सुरक्षित वापस लौटते देख कौन अभागिन खुश न होगी ? फिर तुम तो देश-देशान्तर से मेरे लिए नई-नई चीज़ें भी लाये हो, तब भला मेरी ख़ुशी का क्या पूछना ?" द्रौपदी ने कहा।

"देवी ! माफ़ करो। बनवास के लिए रवाना हुआ तब सहदेव ने मुझसे नई-नई चीज़ें लाने के लिए ख़ास तौर से कहा था। लेकिन आख़िर कितनी चीज़ें लाता ? और लाने में झंझट भी कितना था। इसलिए, देवी, तुम्हारे लिए मैं कुछ भी न ला सका, इसका मुझे दुःख है।" अर्जुन ने दीनता के साथ कहा।

"झूठ मत बोलो अर्जुन !" द्रौपदी ने ज़रा नाराज़ होते हुए कहा, "कैसी सुन्दर तो ग्वालिन लाये हो ! कैसी अच्छी उसकी पोशाक है ! लाल रंग की उसकी ओढ़नी और बढ़िया छींट के लँहगे में वह कैसी सुन्दर लगती है ! कौन जाने उसकी सुन्दरता

और उसके श्रीकृष्ण की बहन होने के कारण ही तो मेरा क्रोध नहीं मिट गया है। अर्जुन! शीशे में क्या देख रहे हो, मेरी तरफ़ देखो न?"

"सामने क्या देखूँ? तुम सुभद्रा के लिए कह रही हो न? पर सुभद्रा तो तुम्हारी दासी बनकर रहने के लिए आई है।" अर्जुन बोला।

"वह तो कभीकी मेरे पैर छूकर गई। और कह भी गई कि 'मैं तो तुम्हारी दासी हूँ।' वह तो श्रीकृष्ण की बहन है न? भला मोर के पंखों पर कहीं कारीगरी की भी ज़रूरत होती है? पर तुम तो फिसल गये न?" द्रौपदी ने कहा।

"पाँचाली! द्वारिका से मैं तथा श्रीकृष्ण यादवों का मेला देखने के लिए रैवतक पर्वत पर गये थे, वहीं मेरी नज़र उसपर पड़ी।" अर्जुन बोला।

"नज़र क्यों पड़ी?" द्रौपदी की आँखें चढ़ गईं।

"नज़र पड़ी सो पड़ी। देवी! तुम्हें यह मालूम है न, कि हम पुरुषों की नज़र जब इस प्रकार पड़ जाय तो फिर हटाये नहीं हटती?" अर्जुन बोला।

"मुझे भला यह क्यों मालूम हो? मैं कोई पुरुष तो हूँ नहीं। मैं तो स्त्री हूँ, इसलिए मेरी नज़र ऐसी जगह पड़े ही नहीं यह मैं ज़रूर जानती हूँ। यह अधिकार तो तुम पुरुषों ने ही रक्खा है!" द्रौपदी ने व्यंग से कहा।

"देवी! ऐसा कहती हो तो यही सही। नज़र जो पड़ गई

वह तो अब न पड़ी जैसी होने वाली है नहीं।" अर्जुन का स्वर भी कुछ कठोर होगया।

"इन बारह वर्षों में ऐसी कितनी नज़रें पड़ीं हैं?" द्रौपदी ने पूछा।

"जितनी पड़ीं होंगीं उतनी ही तुम्हारे सामने आजावेंगी।" अर्जुन ने भी उड़ाऊ जवाब दिया।

द्रौपदी तुरन्त अकड़कर बोली, "मुझसे कुछ छिपा नहीं है। सुभद्रा ने आकर सब बातें कह दीं हैं। मेरी नाग-बहन कहाँ है?"

अर्जुन याद करता हो इस तरह सिर खुजलाता हुआ बोला, "कौन, उलूपी?"

"नाम तो तुम जानो। मैं कोई ब्याह में मौजूद थी, जो नाम जानती?" द्रौपदी ने कहा।

हाँ, उलूपी ही उसका नाम है। पर वहाँ तो मैं एक ही रात रहा था।" अर्जुन ने बतलाया।

"तो उलूपी को उसके पिता के यहाँ ही छोड़ आये?" द्रौपदी ने पूछा।

"हाँ, वह वहीं रहेगी।" अर्जुन ने संक्षेप में कहा।

"और भी कोई रह गई है?" द्रौपदी ने ज़ोर देकर पूछा।

"बस, उलूपी का ही ज़िक्र करना भूल गया था।" अर्जुन कुछ छिपाता हुआ-सा बोला।

"और दूसरी भी तो कोई है?" द्रौपदी ने प्रश्न किया।

"दूसरी? दूसरी यही उलूपी और कौन?" अर्जुन बोला।

"दूसरी नहीं, तीसरी। कोई मणिपुर नामका शहर है न ?" द्रौपदी ने पूछा।

"हाँ, है तो।"

"वहाँ कौन है ? जैसे बिलकुल भूल ही गये हो!" द्रौपदी मज़ाक़ करती हुई बोली।

"अरे हाँ ! चित्रांगदा; चित्रवाहन राजा की पुत्री ! उसकी तो याद ही नहीं रही थी।" अर्जुन कुछ याद करता हुआ-सा बोला।

"याद क्यों रहे ? मणिपुर में सिर्फ़ एक हज़ार रात ही तो रहे और सिर्फ़ एक ही पुत्र तो हुआ, इसलिए भूल जाना स्वाभाविक ही है !" द्रौपदी ने और मज़ाक किया।

"वह चित्रांगदा भी वहीं रहेगी। बभ्रुवाहन बड़ा होने पर आये तो भले ही आजाय।" अर्जुन ने कहा।

अब द्रौपदी से न रहा गया। वह तनकर अर्जुन के सामने बैठ गई और कहने लगी—"अर्जुन ! कुन्ती के उदर से पैदा हुए अर्जुन ! यह तुम निश्चय समझना कि तुम्हारे बनवास से सुरक्षित लौटने पर मु जतनी ख़ुशी हुई है उतनी और किसी-को न हुई होगी। लेकिन इन बारह वर्षों में तुम जो तीन नई गाँठें बाँध लाये हो, उससे मेरे दिल में क्या बीत रही होगी, इसका तुमने कोई ख़याल किया है ? सुभद्रा तो श्रीकृष्ण की बहन इसलिए मेरी भी बहन ही है। लेकिन तुम पुरुष लोग ज्यों-ज्यों नई गाँठें बाँधते जाते हो त्यों-त्यों पुरानी गाँठें ढीली होती जाती हैं, यह

खयाल ज़रूर रखना।"

अजुन द्रौपदी को शान्त करते हुए बोला : "देवी ! क्रोध मत करो। जो होगया वह तो हो ही गया।"

"यह तो मैं समझती हूँ, अर्जुन !" पर अपनी छाती को चीरकर बताऊँ तो तुम्हें पता चले कि वहाँ इस समय कैसा तूफ़ान उठ रहा है।" द्रौपदी बोली।

"मैं उसकी कल्पना कर सकता हूँ।" अर्जुन ने कहा।

"तुम कैसे कल्पना कर सकते हो ?" द्रौपदी गरम हो उठी, "ईश्वर ने ऐसी कल्पना से पुरुषों को बाँझ बनाया है। तुम पुरुष तो हमें अपनी वासना के यंत्र समझते हो। तुम्हारे लेखे तो हमारे न मन होता है न हृदय, न बुद्धि होती है न मानापमान का खयाल। हमारी तो तुमने ऐसी स्थिति बनादी है कि जब तुम चावी दो तब हम बोलें-चालें और उछल कूद मचायें, पर जब चाबी निकाल दो तो जहाँ-के-तहाँ पड़े रहें। क्यों, बोलते क्यों नहीं ?"

"देवी ! तुम तो हमारे कुल की भूषण हो !" अर्जुन ने कहा।

"हाँ, आभूषण तो हैं ही। पर तभी जवतक कि वह तुम्हें अच्छा लगे। एक आभूषण पुराना हुआ नहीं कि तुम उसे पिटारी में रखकर नया खरीद लो, इसी तरह के आभूषण न ?" द्रौपदी ने कटाक्ष किया।

"देवी ! इस समय तो तुम जो कहो वह सब सुनने को मैं तैयार हूँ।" अर्जुन बोला।

"सुनोगे नहीं तो जाओगे कहाँ ? पर अर्जुन, सहन तो मुझे

करना पड़ता है न ? आर्यों में किसी स्त्री के पाँच पति होना सुना है ? फिर मैं तो ठहरी द्रुपद की पुत्री और वीर धृष्टद्युम्न की बहन। अपनी कुल-परम्परा छोड़कर और अपनी सगी माँ के कहे पर ध्यान न दे मैंने तुम पाँचों के साथ शादी की। अर्जुन ! तुम सब भाइयों के स्नेह की भूखी होकर मैंने तुम्हारे कुलधर्म के अनुसार आचरण किया। तुम पाँचों भाइयों के बीच रहकर और तुम्हारी वासनाओं को तृप्त करते हुए भी तुम लोगों में कोई भेदभाव पैदा किये बग़ैर मैं तुम्हारा घर चला रही हूँ। इसमें मेरी क्या गत होती है, यह तुम्हें क्या मालूम ? माता कुन्ती के पाँचों पुत्रों में एका बना रहे इसका मुझपर कितना भार होगा, इसका भी तुम्हें कुछ ख़याल है ?" द्रौपदी ने पूछा।

"ज़रूर है।" अर्जुन ने कहा।

"नहीं है। तुम सब भाइयों को मुझ एकसे संतोष नहीं हुआ, इसीसे दूसरे-तीसरे ब्याह करने के लिए दौड़ते फिरते हो, मुझे तो यही मानना चाहिए ?" द्रौपदी ने कहा।

"देवी ! ऐसी बात नहीं है। हमारे कुल में पुरुषों के एक से अधिक स्त्रियों के साथ ब्याह करने का रिवाज है, इसलिए इससे तुम्हें बुरा न मानना चाहिए।"

"मैं तो, बाबा, हारी तुम्हारे इस कुल से ! एक स्त्री से पाँच पुरुष विवाह करें, तब कहो कि 'यह हमारे कुल का रिवाज है।' और एक पुरुष अनेक स्त्रियों से विवाह करे तब भी वह 'कुल-धर्म !' भला ! यह तुम्हारा कैसा कुल-धर्म है ? अर्जुन ! आज

तुम आर्य लोगों के बीच रह रहे हो। स्त्री के विवाह किये हुए पति से पुत्र उत्पन्न न हो तो दूसरे पुरुष से पुत्र उत्पन्न करे, पति मर गया हो तो परपति के साथ नियोग करे, एक पुरुष अनेक स्त्रियों को ब्याहे या एक स्त्री अनेक पतियों से विवाह करे—ऐसे अनेक रीति-रिवाज आर्य लोगों में पहले किसी ज़माने में थे। लेकिन तुम्हें समझना चाहिए कि सुसंस्कृत आर्य इन रिवाजों से मुक्त होते जाते हैं। जब संस्कारी आर्य एकपतिव्रत और एक-पत्नीव्रत का शुद्ध आदर्श स्वीकार करने लगे हैं, तब पाँचसौ वर्ष पुराने विवाह के जंगली रिवाजों को कुल-धर्म के नाम से पकड़े रहोगे तो तुम्हारा और तुम्हारे कुल का पतन होगा और आर्य तुम्हें पामर समझेंगे। अर्जुन! आज जितनी समझ मुझमें है उतनी जिस दिन तुमसे विवाह किया उस दिन होती, तो जैसे भी होता मैं तुममें से किसी एक के साथ ही विवाह करती और पाण्डवों के ही हाथों पाण्डवों के कहे जानेवाले इस कुल-धर्म का ख़ात्मा कराती।" द्रौपदी ने कहा।

"देवी, देवी! आज तुमने मेरी आँखें खोल दीं।" अर्जुन ने कहा।

"तुम पुरुष आँखें मूँदकर चाहे जिससे विवाह करते रहो और मैं कुछ न बोलूँ, तो फिर मैं तुम्हारी स्त्री कैसी? अर्जुन! जो-कुछ कह रही हूँ उसके लिए माफ़ करना। पर ग़नीमत यही है कि तुम्हें द्रौपदी जैसी आर्य-स्त्री मिली है। दुनिया में आर्य-स्त्री न होतीं तो तुम्हारे-जैसे पुरुष विवाहित जीवन को पशु-जीवन-सा

बनाने में ज़रा भी न हिचकिचाते।" द्रौपदी ने कहा।

"देवी ! तुम जो-कुछ कहती हो वह सब ठीक है। पर आज तो मैं जो भूल कर चुका हूँ वह अब मिथ्या नहीं हो सकती। अब मेरी भूलों की अगर तुम और छानबीन करोगी तो सुभद्रा अपने मन में और दुःखी होगी। ग़लती अगर किसीकी है तो वह मेरी है, और उसका फल मुझे मिलना चाहिए।" अर्जुन दीन स्वर में बोला।

"अर्जुन ! मैं द्रुपद की पुत्री हूँ। सुभद्रा को मैंने अपनी बहन कहा है, वह ख़ाली दिखावे के लिए नहीं है। वह बेचारी तो मेरी ही तरह आई है। मेरा रोष तो तुम सब पर है।" द्रौपदी ने कहा।

"सबपर नहीं, बल्कि अकेले मुझपर।" अर्जुन बोला।

"नहीं, युधिष्ठिर पर भी है; क्योंकि तुम जब सुभद्रा का हरण करने वाले थे उससे पहले तुमने युधिष्ठिर की सलाह पुछवाई थी, यह मैं जानती हूँ।" द्रौपदी ने कहा।

"और भाईसाहब ने उसकी आज्ञा भी तो दे दी थी ?" अर्जुन बोला।

"हाँ। कोई भी रिवाज जब लम्बे अर्से से जारी हो तो उस रिवाज के पीछे चाहे जैसा अधर्म छिपा होने पर भी वह पुराने रिवाज के नामपर समाज में अपनी प्रतिष्ठा करा लेता है। और सर्वसाधारण तो रिवाज के इस पुरानेपन को ही इसकी योग्यता का प्रमाणपत्र मान लेते हैं। युधिष्ठिर महाराज भी इस कहे जाने वाले कुलधर्म से ऊपर उठकर विवाह का विचार न कर सके,

इसीलिए उस कुम्हार के घर में मेरे पिताजी से कह दिया कि 'यह तो हमारा कुल-धर्म है' और तुम्हें भी सुभद्रा के लिए आज्ञा दे दी। पर अर्जुन ! अब मिहरबानी करके अपनी प्रजा को ऐसे कुल-धर्म से बचाना। मैं तो यही चाहती हूँ कि यह कुलधर्म अब यहीं पर ख़त्म होजाय और पाण्डवों की संतानों के लिए नया सुसंस्कृत कुल-धर्म बने।" द्रौपदी ने अर्जुन के हाथ जोड़े।

"देवी ! मुझे लज्जित न करो। आज तो मैं तुम्हारी बंदना करना चाहता हूँ।" अर्जुन विनयपूर्वक बोला।

"अर्जुन ! मेरी वन्दना मत करो। मैंने अगर तुम्हारी भूल बताने के लिए ही वह सब कहा होता तब तो और बात थी; पर मैंने तो शायद बहुत ज्यादा कठोर बातें कहीं हैं। लेकिन प्यारे अर्जुन ! मैंने जो कुछ कहा उसमें मेरे दिल का दर्द था, इस कारण मैं तुम्हारी वन्दना करती हूँ। तुम मेरे लिए तीन-तीन सौतें लाये, उसकी ईर्ष्या के कारण मैं जल रही थी; इस कारण मैं तुम्हारी वन्दना करती हूँ। तुमपर इतना क्रोध करके अब मैं थोड़ी हलकी हूँ। मेरी आँखों का ज़हर अब निकल गया है।" द्रौपदी शान्त हुई।

"देवी पाञ्चाली ! तो अब चलें ? महाराज युधिष्ठिर हमारी राह देखते होंगे।" अर्जुन ने कहा।

और अर्जुन और द्रौपदी दोनों युधिष्ठिर के पास गये।

: ५ :

खाण्डव वन में आग

सुभद्रा को लेकर अर्जुन इन्द्रप्रस्थ आया, उसके कुछ समय बाद श्रीकृष्ण सुभद्रा के विवाह का भात देने के लिए इन्द्रप्रस्थ आये।

एक बार अर्जुन और श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ के आस-पास का प्रदेश देखते हुए घूम रहे थे, इतने में उन्हें रास्ते में एक ब्राह्मण दिखाई दिया। अर्जुन और श्रीकृष्ण को जाते देख, ब्राह्मण गिड़-गिड़ाकर उनसे कहने लगा—"महाराज ! मैं ब्राह्मण हूँ और कई दिनों से भूखा हूँ। आप कृपा करके मेरी भूख मिटाइए।"

श्रीकृष्ण बोले—"जिसके चेहरे पर इतना तेज दीप्तिमान है, वह भला भूखा कैसे हो सकता है ?"

"महाराज !" ब्राह्मण हाथ जोड़कर बोला, "प्राणिमात्र की भूख भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। किसीको अन्न की भूख होती है तो किसीको विद्या की; किसीको धन की भूख होती है तो किसीको कीर्ति की; किसीको स्त्री की भूख होती है तो किसी-को पुत्र की; इसी प्रकार किसीको त्याग की भूख होती है तो किसी को सत्ता की।"

"तुम्हें किस चीज़ की भूख है ?" अर्जुन ने पूछा।

"मुझे सत्ता की भूख है। इस खाण्डव वन पर मैं अपना

आधिपत्य स्थापित करना चाहता हूँ ।" ब्राह्मण बोला ।

"तू तो इन्द्रप्रस्थ पर भी अपना आधिपत्य चाह सकता है । चाहने का क्या । पर खाण्डव वन के साथ तेरा सम्बन्ध क्या है ?" अर्जुन ने पूछा ।

"महाराज ! आपने मुझे पहचाना नहीं । मैं अग्नि हूँ । कुछ बरस पहले इस सारे प्रदेश को मैंने अपने अधिकार में कर लिया था और खाण्डव वन के नाग लोगों का संहार कर डाला था ।" अग्निदेव बोला ।

"तो फिर आज यह किसके अधिकार में है ?" अर्जुन बोला ।

"मैंने नागों का संहार किया, उसके बाद कुछ समय तक तो वे दबे हुए-से रहे; लेकिन फिर तो देखते-ही-देखते सारे प्रदेश में अराजकता फैल गई और नाग लोगों के नायक तक्षक ने मेरी सत्ता को उखाड़ दिया ।" अग्नि ने कहा ।

"तो तक्षक बहुत बलवान है, क्यों ?" श्रीकृष्ण ने प्रश्न किया ।

"बलवान तो है ही । पर साथ ही उसे देवराज इन्द्र की भी बड़ी मदद है । इन्द्र अगर उसकी मदद पर न हो तो इसी घड़ी मैं उन सबको जलाकर भस्म करदूँ ।" अग्नि ने कहा ।

"तो अब तुम क्या करना चाहते हो ?" श्रीकृष्ण ने पूछा ।

"महाराज ! क्या करूँ और क्या न करूँ इसीकी उधेड़बुन करता हुआ मैं वरुण के पास गया था । वरुण हमारे देवलोक के पुराने ऋषि हैं । आजतक जगत् में जब-जब प्रलयकाल जैसे संहार हुए हैं तब-तब संहार में काम आनेवाले ख़ास-ख़ास शस्त्रास्त्र

वरुण के यहाँ ही बने हैं। जब कभी संहार का कोई ईश्वरी संकेत होता है तो वरुण उस संकेत के अनुसार बहुत सावधानी से शस्त्रास्त्र तैयार रखते हैं और समय आने पर अधिकारी पुरुष को उन्हें पहुँचाते हैं।" अग्नि ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा।

"तुमने वरुण के पास जाकर क्या किया?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"मैं तो अपनी विपत्ति में उनसे सलाह माँगने गया था। उस समय वरुणदेव किसी भावी संहार के लिए शस्त्रास्त्र तैयार कर रहे थे। मेरी बात सुनते ही वह बोले, 'यह रथ देखा? इसमें ये दो तरकश ऐसे बनाये हैं जिनमें वाण कभी खत्म ही नहीं होंगे। ये सफ़ेद घोड़े हैं, हनुमान की ध्वजा वाले इस रथ को ये घोड़े खींचेंगे। और यह धनुष? देखो इसमें कैसे-कैसे रत्न जड़े हुए हैं। इस गाण्डीव की टङ्कार मात्र ही शत्रु के लिए काफ़ी है। यह गदा और यह चक्र भी देख। इस समय संसार में थोड़े ही समय बाद एक महासंहार होनेवाला है, उसीके लिए ये दिव्य शस्त्रास्त्र मैं तैयार कर रहा हूँ।" अग्निदेव बोलते-बोलते ज़रा अटक गये।

"लेकिन तुम्हारी बात का उन्होंने क्या जवाब दिया?" अर्जुन बोला।

"मुझे उन्होंने यह बता दिया कि इन साधनों का उपयोग करने के लिए श्रीकृष्ण और अर्जुन पृथ्वीलोक में पैदा हुए हैं, इसलिए तुम उनसे मिलकर मदद माँगो तो ठीक होगा। अगर वे मदद करना स्वीकार करलें तो मेरे ये साधन उनके लिए तैयार हैं।" अग्नि ने अपनी बात समाप्त की।

"तो जो तुम चाहते हो वही वरुणदेव का महासंहार है क्या ?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"अजी नहीं। महासंहार तो कुछ समय बाद होनेवाला है। मुझे खुद इस महासंहार के बारे में कुछ भी मालूम नहीं है। लेकिन पुरातन ऋषि वरुण कहते थे कि इस जगत् में एक महा-संहार के बीज उग चुके हैं—उसको अब बहुत समय नहीं है।" अग्नि ने कहा।

"सखा अर्जुन!" "श्रीकृष्ण ने पूछा, "बोलो, क्या इरादा है ?"

"लक्ष्मी अगर बिना माँगे आती हो तो उसके लिए इन्कार क्योंकर हो सकता है ? वरुण का दिया हुआ दिव्य रथ मिले, घोड़े मिलें, गाण्डीव धनुष और जिसमें कभी बाणों की कमी न पड़े ऐसा तरकश मिले, इसके अलावा गदा और चक्र भी मिलते हों, तो फिर क्या बात है ? अग्निदेव की मदद करके भला उन्हें हम क्यों न ले लें ? अग्नि को हम अपना मित्र बनायेंगे तो किसी-न-किसी दिन वह हमारे काम ही आयेंगे।" अर्जुन ने जवाब दिया।

"अच्छा तो, अग्निदेव, आप वरुण के पास से उन सब साधनों को ले आइए और फिर आप चाहें तो खाण्व वन में आग लगा दें। आप जब आग लगायेंगे तब हम किसीको भागने नहीं देंगे। बतलाइए, कब आप यह काम शुरू करगे ?" श्रीकृष्ण ने अग्नि से कहा।

"कल ही क्यों न शुरू करदें ? इस समय तक्षक कुरुक्षेत्र

गया हुआ है, यह भी सुयोग की ही बात है। वरुण के पास से उन सब साधनों को लाने में भला क्या देर लगती है ? महाराज ! आपको अनेक नमस्कार !" यह कहकर अग्नि ने विदा ली, और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन इन्द्रप्रस्थ की ओर गये।

× × ×

अग्नि के खाण्डव वन में प्रवेश करते ही ऐसा मालूम होने लगा मानों चारों ओर प्रलय आगया। पृथ्वी के संहारकाल के समय जिस प्रकार आकाश में मेघ छा जाते हैं और बिजली की कड़कड़ाहट से पृथ्वी फटने लगती है उसी प्रकार खाण्डव वन के विशाल वृक्ष बड़े ज़ोरों से आवाज़ करते हुए जलने लगे और उनके धुंएँ से अनंत आकाश काँपने लगा। खाण्डव वन में नाग लोगों की बस्ती थी। नाग लोगों के नायक का नाम तक्षक था। वह किसी काम से गया हुआ था। नागों के अनेक स्त्री-पुरुष, ढोर-डंगर, पशु-पक्षी, साज-सामान सब अग्निदेव की प्रचण्ड ज्वालाओं में भस्म होने लगे। पक्षी गर्मी को सहन न करने के कारण उड़ने लगे, लेकिन अधबीच में ही आग से पंखों के झुलस जाने पर आग में गिर पड़े और भस्म होगये। कितनी ही नाग स्त्रियाँ अपने दुधमुँहे बच्चों को लेकर भागीं, लेकिन अग्नि ने उनको रास्ते में ही पकड़ लिया और उनके दूध-पीते बच्चों को अपनी माँ की छातियों में ही भस्म कर दिया। नाग लोगों के ढोर-डंगर अपनी रक्षा के लिए चिल्लाते हुए इधर-उधर भागने लगे; लेकिन अग्नि उनको भी छोड़नेवाला नहीं था। सारे खाण्डव वन में भय

और त्रास का साम्राज्य छा गया और वहाँके निवासियों के आर्त्तनाद से कान फटने लगे; लेकिन अग्निदेव तो हृदयहीन होकर अपना काम किये ही जारहे थे। तक्षक के परममित्र इन्द्र को जब नाग लोगों की इस विपत्ति की ख़बर हुई तो वह उनकी मदद को दौड़े; लेकिन क्या करते? अग्निदेव ने तो सारे प्रदेश को घेर लिया था और कोई छोटा-सा प्राणी भी जिन्दा वहाँसे बाहर न निकले, इसके लिए अर्जुन तथा श्रीकृष्ण सीमा पर मौजूद थे। देवराज इन्द्र ने जलते हुए खाण्डव वन को बुझाने का कितना ही प्रयत्न किया और अन्त में सारे प्रदेश पर पानी की सहस्रों धारायें बरसाईं, लेकिन पानी की धाराओं से आग में और वृद्धि ही हुई। इसलिए इन्द्र हताश हुए और जलते हुए सारे खाण्डव वन को खड़े-खड़े देखते भर रहे।

अर्जुन और श्रीकृष्ण सारे प्रदेश में घूम-फिरकर इस बात की ख़ास निगरानी रख रहे थे कि अग्नि के इस सपाटे में से कोई बचकर निकल न जाय। इन्द्र के सारे प्रयत्नों को निष्फल करने में अर्जुन का बड़ा हाथ था। वरुण के दिये हुए इन नये साधनों से ये दोनों मित्र जलकर ख़ाक होजाने वाले वन की सीमा की रक्षा कर रहे थे। इतने में किसीकी ज़ोर से आवाज़ आई—"हे श्रीकृष्ण! ओ अर्जुन! मुझे बचाओ, मेरी रक्षा करो।"

आवाज़ सुनते ही अर्जुन चौंक पड़ा। पीछे मुड़कर देखा तो एक पुरुष बड़ी ज़ोर से दौड़ता हुआ आ रहा था और आग की लपटें उसका पीछा कर रही थीं।

"हे श्रीकृष्ण ! हे अर्जुन ! मुझे बचाओ, नहीं तो तुम्हें बड़ा पाप लगेगा।"

अर्जुन ने अग्नि की लपटों को रोककर उस पुरुष से पूछा, "तुम कौन हो और क्यों भाग रहे हो ?"

आग की लपट से बचकर आगन्तुक ज़रा स्वस्थ हुआ और बोला, "महाराज ! मैं एक दानव हूँ। मेरा नाम मय है। बहुत वर्षों से इस खाण्डव वन में रहता हूँ। अपने अध्ययनगृह में स्थापत्य और शिल्प शास्त्रों का अध्ययन कर रहा था, इतने में इन लपटों ने मुझे पकड़ लिया। इसलिए तुम्हारे पास भागा आया हूँ। मुझे इनसे बचाओ !"

"आज तो अग्निदेव सारे वन में आग लगा चुके हैं, इसलिए उसमें से कोई ज़िन्दा बचकर जा नहीं सकता।"

"श्रीकृष्ण ! पाण्डु के पुत्र अर्जुन ! तक्षक और अग्निदेव का आपस में वैर है। इसके लिए तक्षक की सारी प्रजा को जलाकर भस्म कर देना क्या अग्निदेव का न्याय है ? राजा लोग राज्य-लोभ या सत्ता-लोभ के वश होकर सारे गाँव-के-गाँव उजाड़ डालें तो भी आप सब उसे धर्म के नाम पर सह लेंगे ? मयदानव ने कहना शुरू किया।

"अग्निदेव और तक्षक इन दोनों में से कौन सच्चा है और कौन झूठा, यह देखना हमारा काम नहीं है। हमने अग्निदेव की मदद करना मंजूर किया है, इसलिए यहाँ खड़े हैं और किसी-को बाहर नहीं जाने देते।" अर्जुन ने जवाब दिया।

मयदानव ने ज़रा मुस्कराकर कहा—"कोई साधारण क्षत्रिय ऐसा जवाब देता तो मैं समझ सकता था। लेकिन अर्जुन! तुम तो एक अधिकारी पुरुष हो। मैंने जो-कुछ सीखा है उसपर से मैं कह सकता हूँ कि जिस रथ में तुम बैठे हो वह और तुम्हारे हाथ में जो धनुष और तरकश हैं ये सब किसी ईश्वरीय संकेत के कारण ही तुम्हारे पास हैं। इस कारण तुम्हारे जैसा पुरुष मुझे ऐसा जवाब नहीं दे सकता।"

"तो तुम्हें जाने दें, यही तुम चाहते हो न?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"मेरी रक्षा करो। पर वह मुझ जैसे रंक पर रहम खाकर नहीं। आप जैसे क्षत्रियों को मरना आता है तो मुझ जैसे ब्राह्मणों को भी मरना आता है। अतः मेरी रक्षा करना आपको धर्म मालूम पड़ता हो तो ही मेरी रक्षा कीजिए। शास्त्र में ब्राह्मणों को अवध्य कहा गया है, यह आप क्या नहीं जानते? ब्राह्मण अवध्य सिर्फ़ इसीलिए नहीं है कि उसका शरीर शूद्र के शरीर से कुछ मोटा होता है, बल्कि इसलिए कि ब्राह्मण समस्त प्रजा की संस्कृति का रक्षक है। राज्य-लोभ के चाहे जैसे घोर युद्ध में भी ब्राह्मणों का बलिदान नहीं होने देना चाहिए। आज आप लोग खाण्डव वन को जलाकर हमारे जैसे ब्राह्मणों की संस्कृति का नाश करने पर तुले हुए हैं, इसीका मैं विरोध कर रहा हूँ और इसी कारण मैं अपनी रक्षा चाहता हूँ।" मय ने कहा।

"तुम तो दानव हो न?"

"जन्म से दानव हूँ; लेकिन स्थापत्य और शिल्प-शास्त्र का

ज्ञाता होने के कारण मैं ब्राह्मण हूँ। हम दानव आप लोगों को भले ही जंगली और उजड्ड दिखाई देते हों, फिर भी इस प्रकार की विद्या में तो आम आर्यों को हमसे अभी भी बहुत-कुछ सीखना बाकी है।" मय बोला।

"मय! जा, तुझे मैं अभयदान देता हूँ। तू अपने कुटुम्ब-कबीले को लेकर अच्छी तरह यहाँसे निकल जा। और कोई इच्छा है?" अर्जुन ने कहा।

"खाण्डव वन को आग लगाने के पहले अगर मुझे पता चलता तो बहुत-कुछ माँगता। अग्निदेव ने इस प्रदेश के स्त्री-बच्चों को जलाकर बड़ा भारी अनर्थ किया है। पर अब तो उसका कोई उपाय नहीं रहा। अर्जुन! आज तक्षक की अनुपस्थिति में तुम लोगों ने जो इन तमाम नाग लोगों का संहार किया, इससे तक्षक तुम्हारा मित्र हुआ या शत्रु?" मय ने पूछा।

"आख़िर तुम और कहना क्या चाहते हो?" अर्जुन ने पूछा।

"मेरा मतलब यह है कि इससे तो उलटा तक्षक तुम्हारा शत्रु होगया और उसका मौक़ा होने पर तुम्हें या तुम्हारी प्रजा को वह ज़रूर डसेगा। इसी खाण्डव वन को एक बार अग्निदेव ने अपने अधिकार में कर लिया था, पर वहाँ फिर से नाग लोग आगये और अग्नि को वहाँ अपना पाँव रखना भारी पड़ गया। आज तुमने नाग लोगों का सर्वनाश किया है तो कल नाग लोग तुम्हें सतायेंगे। इस प्रकार यह समस्या तो ज्यों-की-त्यों बनी ही रहेगी न? यह ठीक है कि मुझे इन सब बातों से कोई मतलब नहीं है; पर मैं तो

अपने मन में उठी हुई बात सिर्फ़ कह भर रहा हूँ।" मय बोला।

"आज इन सब बातों पर विचार करने का समय नहीं है। तू अपनी जान लेकर भाग जा।" अर्जुन ने कहा।

"धन्यवाद, महाराज! आपने मेरी बातों को सुनकर मेरी रक्षा की, इसलिए एक प्रार्थना करता हूँ। मेरी स्थापत्यकला और शिल्पकला की जब आपको ज़रूरत हो तब मैं आपकी सेवा के लिए तैयार हूँ। खाली शिष्टाचार के लिए मैं यह नहीं कह रहा हूँ, यह ध्यान रक्खेंगे।" मय ने कहा।

"अच्छी बात है; जाओ।"

"अर्जुन! भविष्य में तुम शायद राजसूय यज्ञ करो, तब यह दानव तुम्हारे काम आसकता है। इसलिए उस वक़्त यह बात याद रखना।"

"ठीक है।" श्रीकृष्ण ने यह कहकर बात पूरी की।

मयदानव दोनों की आज्ञा लेकर चला गया और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन अपने-अपने काम में लग गये।

: ६ :

सारथी बृहन्नला

बनवास के तेरहवें वर्ष पाण्डवों को अज्ञातवास में रहना था। द्रौपदी समेत पाँचों पाण्डव विराट राजा के नगर में गुप्तवेश में रहे। उर्वशी के शाप से अर्जुन एक साल के लिए नपुंसक बन गया और बृहन्नला नाम रखकर राजकुमारी उत्तरा को संगीत तथा नृत्य सिखाने लगा। द्रौपदी रानी सुदेष्णा की दासी बनी और उसने अपना नाम सैरन्ध्री रक्खा।

अज्ञातवास के दिनों में पाण्डवों को खोजकर प्रकट कर देने के लिए कौरव जीतोड़ कोशिश कर रहे थे। इसके लिए अपने कितने ही गुप्त जासूस भी उन्होंने देश-विदेशों में भेजे। जिमूत नाम का अद्वितीय पहलवान विराटनगर में कुश्ती में हारकर मारा गया। यह समाचार पाकर शकुनि को कुछ शंका तो हो ही गई थी। कीचक और उसके सौ भाइयों की बात भी उड़ती-उड़ाती कौरवों तक पहुँच ही गई। अतः दुर्योधन ने एक बड़ी फ़ौज के साथ विराटनगर पर चढ़ाई करदी।

× × ×

एक दिन रानी सुदेष्णा अपने महल में बैठी हुई थी और सैरन्ध्री उनकी चोटी गूँथ रही थी। एकाएक दरवाज़े पर किसी

की आवाज़ आई—"सुदेष्णा माई ! हमें बचाओ । अरे, जल्द बचाओ ! हाय ! मार डाला रे !"

आवाज़ सुनते ही सुदेष्णा उठ खड़ी हुई और पूछा—"कौन ? दरवाज़े पर यह कौन चिल्ला रहा है ?"

"माताजी, यह तो हम हैं, आपकी गाय चराने वाले। वह देखो, गाँव के बाहर बड़ी भारी फ़ौज आई हुई है और हमारे ढोर-डङ्गरों को भगाकर लिये जा रही है।" एक ग्वाले ने कहा।

"किसकी फ़ौज है ?"

"हमने जब पूछा तो उन्होंने कहा, यह कौरवों की सेना है। माताजी ! देखो न, हमारे सिर और पीठ पर लाठियाँ मार-मार कर हमें भगा दिया और सब-की-सब गायें ले गये। माताजी, हम और किसके पास जावें ? आप ही का तो सहारा है। हमें बचाओ।"

"भला मैं अकेली क्या कर सकती हूँ ? महाराज अपनी सारी सेना लेकर दक्षिण दिशा की ओर गये हुए हैं और अभी-तक वापस नहीं लौटे हैं। सेनापति भी उन्हींके साथ हैं। यहाँ तो मैं और कुमार उत्तर यही दो हैं।" सुदेष्णा ज़रा दीन होकर बोली।

"तो फिर उत्तर भाई लड़ने जायँगे।" द्रौपदी के कहा, "क्यों उत्तर भाई ?"

कुमार उत्तर एकदम छलाँग मारकर उठा और बोला—"हाँ-हाँ, बन्दा लड़ने जायगा, बन्दा ! कहाँ है कौरव सेना ? देखो, सबको मार गिराता हूँ।"

"शाबास ! कैसे बहादुर हैं उत्तर भाई ! ठीक तो है। पिताजी यहाँ नहीं हैं, तब आज तो तुमको ही लड़ने जाना और सबको हराकर वापस आना चाहिए।" द्रौपदी बोली।

"सैरन्ध्री ! इसमें भी कुछ कहना है! इस तलवार से दुर्योधन की गर्दन उड़ा दूँगा, और उसके भाइयों के लिए तो मेरा एक तीर ही काफ़ी है। माँ! बस, अब जल्दी से मेरा रथ तैयार कराओ।"

"सैरन्ध्री ! इस अबोध बालक को क्यों भड़का रही है ? बेटा, तू अभी अकेला लड़ने कैसे जा सकता है ? जब बड़ा हो तब जाना ? अभी तो तू बच्चा है।" सुदेष्णा ने कहा।

"क्या अभी मैं बच्चा ही हूँ ? ज़रा मेरी तरफ़ देख तो ! नहीं, मुझे तो आज जाना ही है। नहीं जाने देगी तो यहीं मैं अपनी जान दे दूँगा। मैं विराटनगर का राजकुमार हूँ। शत्रु हमारी गायें ले जायें और मैं देखता रहूँ ?" उत्तर बेक़रार होकर बोला।

"तो माँ ! कुमार को जाने दो न ?" द्रौपदी बोली।

"तू भी अच्छी मिली। तूने कोई बच्चा पैदा किया होता तो जानती कि कैसे भेजा जाता है। अकेले कुमार को इस कौरव सेना रूपी काल के मुँह में भला कैसे भेज दूँ ?" रानी बोली।

"अकेले भला क्यों जायँगे ? साथ में इस बृहन्नला को भेज दीजिए।" द्रौपदी बोली।

"बृहन्नला को ? यह क्या वहाँ चोटी खोलकर नाचेगी ?" सुदेष्णा ने कटाक्ष किया।

"रानीजी !" द्रौपदी ने कहा, "इस बृहन्नला ने तो अर्जुन तक का रथ हाँका है।"

"अर्जुन का रथ हाँका है ? तब तो बृहन्नला, तू मेरे साथ चल और मेरा रथ हाँक।" उत्तर अर्जुन का हाथ पकड़कर उसे खींचने लगा।

"बृहन्नला ! क्या सचमुच तूने अर्जुन का रथ हाँका है ? मेरी समझ में तो यह बात आती नहीं। और अगर हाँका हो तो भी उसका यह मतलब तो नहीं ही हुआ कि उत्तर को लड़ाई में भेज दिया जाय।" रानी बोली।

"माँ ! मैं तो ज़रूर जाऊँगा। तुम भले ही मना करो, पर मैं तो रुकनेवाला नहीं हूँ। मैं जाऊँगा और फिर जाऊँगा।"

"रानीजी ! कुमार जब जाने का आग्रह कर रहे हैं तो उन्हें भेज दो न ?" द्रौपदी ने कहा।

"और जब महाराज आकर पूछेंगे तब उनको मैं क्या मुँह दिखाऊँगी ?" रानी क्रुद्ध होकर बोली।

"कुमार का बाल भी बाँका नहीं होगा, इसका मैं विश्वास दिलाती हूँ। बृहन्नला जब रथ पर बैठी हो तो रथ को कोई आँच नहीं आ सकती।" द्रौपदी ने कहा।

"बृहन्नला की खूब कही ! अरे, वहाँ लड़कियों को नाचना-गाना तो सिखाना नहीं है; वहाँ तो मर्दों के खेल होते हैं।" रानी ने कहा।

"लेकिन माँ !" उत्तर बोला, "मैं तो जाये बग़ैर नहीं रहूँगा।

मैं मर्द हूँ। इस प्रकार कायर बनकर घर में नहीं बैठ सकता।"

"माँजी, मेरी समझ में तो आप कुमार को जाने दें।" द्रौपदी फिर बोली।

"तू जबसे 'जाने दो', 'जाने दो' ही कह रही है। पर बृहन्नला भी तो यहाँ पास ही खड़ी है, उसके मुँह से तो बोल भी नहीं निकल रहा है।" रानी ने गुस्से से कहा।

"माँजी, मैं क्या कहूँ? सैरन्ध्री कह ही रही है। अपने मुँह से कुछ कहना मुझे शोभा नहीं देता। फिर भी मैं कहती हूँ कि मुझे भेजेंगी तो कुमार को ऐसे-के-ऐसे ही आपकी गोदी में सौंप दूँगी, यह विश्वास रक्खो।" अर्जुन ने जताया।

"अब माँ! जल्दी करो। बृहन्नला! तैयार होजा। अश्वशाला में से घोड़े जोड़कर रथ को यहाँ ले आ। बेचारे ये ग्वाले राह देख रहे हैं।" उत्तर बोला।

"रानीजी की आज्ञा हो तब न?"

"बृहन्नला! सैरन्ध्री! तुम्हारे वचनों पर विश्वास रखकर मैं अपने इस कोमल कुमार को तुम्हें सौंपती हूँ। बृहन्नला! उत्तर अभी बालक है, इसलिए मन तो नहीं मानता; लेकिन तूने अर्जुन का रथ हाँका है, इसलिए मुझे धीरज है। जा, तू रथ तैयार कर।"

रानी के कहने पर अर्जुन रथ तैयार करने गया। इधर सुदेष्णा कुमार उत्तर को तैयार करने लगी।

× × ×

विराटनगर के दरवाज़े में से घुंघरुओं की मधुर आवाज़

करता हुआ कुमार उत्तर का रथ निकला। रथ में चार सफेद घोड़े जुड़े हुए थे और आगे घोड़ों की लगाम हाथ में लिये बृहन्नला बैठी हुई थी। अन्दर विराट राजा का लाड़ला कुमार बैठा हुआ मंसूबे बाँध रहा था कि अपने कमरे में रक्खे खिलौनों को काठ की तलवार से जिस आसानी से मार देता हूँ उसी तरह कौरवों को हराकर तुरंत वापस आजाऊँगा। कौरवों को देखने के लिए वह बार-बार उचकता और अपनी गर्दन इधर-उधर घुमाता था।

दरवाज़े से बाहर निकलते ही बृहन्नला ने घोड़ों की लगाम को अच्छी तरह पकड़ा और घोड़ों को छोड़ दिया। रथ के पहिये धूल उड़ाने लगे और थोड़ी देर में यह निश्चय करना मुश्किल होगया कि घोड़ों के पैरों की खुरें ज़मीन को लगती भी हैं या नहीं। कुमार उत्तर को इस रथ-यात्रा में बड़ा मज़ा आ रहा था। लेकिन सामने कुछ देखकर वह एकाएक चौंका और कहने लगा— "बृहन्नला! यह रथ इधर क्यों हाँका? हमें तो कौरवों की सेना को मारना है, और यह तो समुद्र की तरफ़ जाने का रास्ता है।"

"कुमार! धीरज रक्खो, रथ कौरवों की सेना की तरफ़ ही हाँका जा रहा है।" अर्जुन ने शांति से जवाब दिया।

"पर सामने तो समुद्र दिखाई दे रहा है! समुद्र की लहरें कैसी उछल रही हैं। उसका पानी सूर्य के तेज से कैसा चमक रहा है! तू गलत रास्ते ले आई। चल, रथ को दूसरी तरफ़ मोड़।" उत्तर बोला।

"कुमार! तुम जो देख रहे हो वह समुद्र नहीं है; यही

कौरव-सेना है। कौरव-सेना के भाले और तलवारों की चमक से तुम्हें समुद्र का आभास हो रहा है।" अर्जुन ने कहा।

"बृहन्नला! तू क्या कह रही है? क्या यही कौरव-सेना है, जिसके सामने मैं आँख उठाकर देख भी नहीं सकता? ये जो चमक रहे हैं, वे क्या सैनिकों के हथियार हैं?" उत्तर ने पूछा, और पूछते-पूछते उसका सारा शरीर पसीने से तर होगया। उसके हाथ ढीले पड़ गये, मुँह सूख गया, और शरीर के अंग-प्रत्यंग काँप उठे। अफीम खानेवाले का नशा उतर जाने पर उसका शरीर जैसे टूटने लगता है उसी तरह कुमार का जोश उतर गया और सारा शरीर कांपने लगा।

इधर अर्जुन का सारा ध्यान तो कौरव-सेना पर ही था। सुदेष्णा के महल में ग्वालों की बातें सुनी तभीसे उसके हाथ शस्त्र पकड़ने को अकुला रहे थे। आज तेरह वर्षों से अन्दर के जिस जोश को बड़ी मेहनत से दबा रक्खा था वह आज छलछला उठा। बनवास की सारी मुसीबतें उसकी आँखों के आगे नाचने लगीं। प्रिय पत्नी द्रौपदी पर आये कष्ट मानों उसे उलहना देने लगे। जिस महान कार्य के लिए अर्जुन ने स्वयं शंकर भगवान् के पास से पाशुपतास्त्र प्राप्त किया, जिस महान् कार्य के लिए यमराज और वरुण जैसे लोकपालों के पास से दिव्य अस्त्र प्राप्त किये, जिस महान् कार्य के लिए स्वयं इन्द्र से वरदान प्राप्त किया, वह महान् कार्य मानों आज उसका आवाहन कर रहा है, ऐसा मालूम होने लगा। अर्जुन कौरव-सेना की ओर देख रहा था। उसमें भीष्म, द्रोण,

कर्ण आदि होंगे, यह भी कल्पना आई और इस सेना को युद्ध में मार भगाने के मीठे सपने उसके मन में आने लगे। इधर मन में मनसूबे बँध रहे थे, उधर साथ-ही-साथ रथ भी आगे बढ़ता चला जा रहा था।

इतने में अर्जुन ने पीछे नज़र की तो उत्तर रथ में नहीं था। "अरे! कुमार कहाँ गये?" रथ के बाहर गर्दन उठाकर देखा तो कुमार भागा जा रहा था। उत्तर कौरव-सेना को देखकर डर गया था, अतः पीछे से चुपचाप रथ से नीचे उतरकर सीधा विराटनगर की ओर भागा।

"अब? क्या रथ को पीछे लेजाऊँ? शत्रु को पीठ दिखाऊँ?" अर्जुन ने सोचा और रथ को वहीं खड़ा करके उत्तर को पकड़ने के लिए दौड़ा। भागने में उसकी चोटी खुल गई; पर जल्दी ही उसने कुमार को पकड़ लिया। उत्तर छूटने के लिए बहुत छटपटाया; लेकिन अर्जुन कहाँ माननेवाला था? उसने तो कुमार को लाकर रथ में बिठाया और रथ को कौरव-सेना की ओर चलाने के बदले स्मशान की ओर मोड़ लिया। स्मशान में एक खेजड़े का पेड़ था, वहाँ जाकर उसने रथ को खड़ा किया।

"कुमार!" अर्जुन बोला, "देखो अब तुम जा नहीं सकते। तुम लड़ न सको तो मत लड़ो। तुम रथ हाँको, और मैं तुम्हारे बदले लड़ूँगी।"

"तू अकेली कैसे लड़ेगी, बृहन्नला?"

"इस समय कुछ मत बोलो। रथ से नीचे उतरो और इस

पेड़ के ऊपर जो बड़ी-सी पोटली टँगी है उसे नीचे ले आओ।" अर्जुन बोला।

"पर बृहन्नला ! वहाँ तो कोई मुर्दा टँगा हुआ है। कहीं भूत न हो।" उत्तर बोला।

"भूत-वूत कोई नहीं है। तुम लगाम पकड़कर खड़े रहो। मैं रथ पर चढ़कर उतारती हूँ।" ऐसा कहकर अर्जुन ने पोटली उतारी और उसमें से गाण्डीव तथा दो अखूट तरकश निकाल लिये। इसके बाद पोटली जैसी-की-तैसी बाँधकर वहीं पर टाँग दी और मुर्दे को भी वहीं लटका दिया।

पोटली को देखा तभीसे कुमार हक्का-बक्का होगया था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि बात क्या है ? "बृहन्नला !" उत्तर ने कहा, "एक बात पूछना चाहता हूँ। यह धनुष और तरकश किसके हैं ? और तू खुद कौन है ?"

"कुमार ! मौक़ा आगया है, इसलिए सब बताना पड़ता है; पर इतना याद रखना कि अगर तुमने समय से पहले किसीसे कहा तो अपनी जान से हाथ धोओगे। मैं अर्जुन हूँ।" अर्जुन ने खुलासा किया।

"अर्जुन ! पाण्डवों का अर्जुन ? तब तो यह गाण्डीव ही होगा।" कुमार के आनन्द का पार न रहा !

"कुमार ! राजा के पास जो कंक रहता है वह युधिष्ठिर हैं, पाकशाला में जो वल्लभ है वह भीम है, नकुल-सहदेव अश्वपाल और गोपालक हैं, और यह सैरन्ध्री ही द्रौपदी है। समझ गये ?

अब ज़रा भी झिझके बग़ैर रथ को बेधड़क हाँको, और देखो कि अर्जुन कौरवों को कैसे मार भगाता है। जब हम विराटनगर आये थे, तब हमने अपने सब शस्त्रास्त्र बाँधकर इस पेड़ के ऊपर रख दिये थे, और किसीको शक न हो इसलिए उसके पास मुर्दे को टांग दिया था। लेकिन जबतक मैं कह न दूँ तबतक यह बात किसीसे न कहना, समझे ?"

"महाशय अर्जुन ! मैं किसीसे नहीं कहूँगा। मैं अपनी जान ख़तरे में डालकर भी इस बात को गुप्त रक्खूँगा" उत्तर ने कहा, और घोड़े की लगाम अपने हाथ में लेली।

थोड़ी देर में घुँघरुओं की नाद करता हुआ रथ कौरव-सेना के सम्मुख आकर खड़ा हुआ और अर्जुन ने जोर से गाण्डीव का टंकार किया। उस एक ही टंकार ने कौरवों के दिल दहला दिये। 'एक रथ में बैठकर लड़ने के लिए आनेवाले ये दो कौन होंगे ?' 'यह चोटीवाला कौन होगा ?' 'पाण्डवों का तेरहवाँ वर्ष ख़त्म होगया क्या ?' 'न हुआ हो तो यह तो अर्जुन-जैसा ही दिखाई देता है; तब तो फिर उसे और बारह वर्ष वन में भटकना होगा।' इस प्रकार कितने ही तर्क-वितर्क कुरु-सेना में चल रहे थे, इतने में अर्जुन ने फिर गाण्डीव का टंकार किया और भीष्म के चरणों में प्रणाम करते हों इस तरह दो तीर वहाँ आकर गिरे। भीष्म समझ गये और उन्होंने दो तीर अर्जुन के सिर पर डालकर आशीर्वाद दिया। द्रोण की भी अर्जुन ने इसी प्रकार वीर-वंदना की, और द्रोण ने भी उसे आशीर्वाद दिया।

इसके बाद युद्ध शुरू हुआ। भीष्म ने थोड़ी देर तो अर्जुन से टक्कर ली; लेकिन बाद में उन्हें खिसकना पड़ा। द्रोण तो पहले से ही दूर खड़े थे। कर्ण बहुत शेखी बघारता हुआ अर्जुन के सामने आया, लेकिन अर्जुन के गाण्डीव के सामने टिक नहीं सका। दुर्योधन ने युद्ध में बहुत बहादुरी दिखाई और अर्जुन को हराने का प्रयत्न किया, पर उसे भी भागना पड़ा। और अन्त में तो अर्जुन ने सम्मोहन अस्त्र छोड़कर सारी कौरव-सेना को मोह-निद्रा में सुला दिया।

"कुमार!" अर्जुन ने पुकारा।

"क्यों बृह······नहीं, अर्जुन! क्या आज्ञा है?"

"युद्ध देखा न?"

"देखा। आँखें खोलकर देख लिया। मुझे मालूम होता कि युद्ध ऐसा होता है तब तो मैं महल में से ही न निकलता। मैं तो समझता था कि जल्दी से इधर-उधर तलवार के हाथ मारकर दो-चार को ख़त्म कर देना ही लड़ाई है। पर कौरवों से युद्ध करना तो मौत के मुँह में पैर रखना है, यह मैं आज ही समझा। अर्जुन! तुम्हारा जितना उपकार मानूँ उतना ही कम है। आज तो तुमने मुझे मौत के मुँह से बचाया है।" कुमार गद्गद् होगया।

"उत्तर! जब हम लड़ाई में आ रहे थे, तुम्हारी बहन ने तुम्हें टीका काढ़ते वक्त अपनी गुड़ियों के लिए सुन्दर-सुन्दर पोशाकें लाने को कहा था। इस समय सारी सेना सोई हुई है। जाओ, इनमें से जिसके कपड़े तुम्हें अच्छे लगें उन्हें उतार लो। सिर्फ़ भीष्म

और द्रोण के कपड़ों को मत छूना।" अर्जुन ने कहा।

कुमार ने रथ से उतरकर कुछ कपड़े उतारे और रथ में रख लिये। इसके बाद सम्मोहन अस्त्र को वापस खींचकर अर्जुन तथा उत्तर गायों को लेकर विराट की ओर लौट गये।

अर्जुन के चले जाने के बहुत देर बाद जब सेना की मूर्च्छा दूर हुई, तब सब मानों स्वप्न में से उठे हों इस तरह एक-दूसरे की ओर देखते, दूर आकाश में दृष्टि डालते, अपने आस-पास कौन सोया हुआ है यह पता लगाते, अपने शरीर में किस जगह दर्द हो रहा है यह निश्चय करते, उठते-बैठते, कवच और बख्तर की धूल झाड़ते तथा शर्माते हुए कौरव भी दुर्योधन की अधीनता में वापस हस्तिनापुर की ओर जाने की तैयारी करने लगे।

कुरुराज दुर्योधन ने विराटनगर की ओर एक शून्य दृष्टि डाली और अपनी सेना को चलने की आज्ञा दी।

: ७ :

युद्ध की तैयारी

पाण्डवों के प्रकट होजाने के बाद हस्तिनापुर के राज्य में हिस्सा प्राप्त करने के लिए अनेक दूत इधर-से-उधर गये-आये और संधि की बातचीत हुई, लेकिन इस सबका कोई परिणाम निकलनेवाला नहीं था। अन्त में पाण्डवों की ओर से समझौते की शर्तें लेकर श्रीकृष्ण हस्तिनापुर जाने को तैयार हुए।

पाँचों पाण्डव, द्रौपदी और श्रीकृष्ण एकान्त में बैठे बातें कर रहे थे। श्रीकृष्ण बोले—"अर्जुन! अब तुम कहो। महाराज युधिष्ठिर और भीमसेन के विचारों को तो मैंने सुन लिया। पाञ्चाली इस सारे प्रश्न पर किस प्रकार विचार करती है, यह भी मैंने जान लिया। अब मैं तुम्हारे विचार जानना चाहता हूँ।"

"महाराज श्रीकृष्ण!" अर्जुन ने कहा, "मेरे या किसी और के विचार जाने बिना भी आप जो कुछ करेंगे उसमें हमारा कल्याण ही होगा, इसमें मुझे ज़रा भी शंका नहीं है।"

"फिर भी", श्रीकृष्ण बोले, "तुम अपने विचार तो कहो। तुम लोगों की ओर से संधि-चर्चा करने जाऊँ और तुम लोगों के विचारों को बिना समझे-बूझे ही कुछ-का-कुछ करने लगूँ तो मेरी संधि-चर्चा को बट्टा लगेगा और मेरे प्रति तुम्हारी जो श्रद्धा है उसमें भी बट्टा लगेगा।"

"श्रीकृष्ण ! महाराज युधिष्ठिर जो कहते हैं और जिस तरीके से कहते हैं, वह मुझे तो बिलकुल नहीं रुचता। जिस प्रकार कौरव धृतराष्ट्र-पुत्र हैं, उसी प्रकार हम लोग भी महाराज पाण्डु के पुत्र हैं; हस्तिनापुर के सिंहासन पर जितना अधिकार उनका है, उतना ही बल्कि उससे ज्यादा हमारा अधिकार है। इस अधिकार को अधिकार मानकर काम करने के बजाय महाराज युधिष्ठिर आजतक धृतराष्ट्र से अनुनय-विनय ही करते रहे, जिससे आज तो सबकी यही ग़लत धारणा होगई है कि हमें ऐसा हक़ है ही नहीं; और धृतराष्ट्र तो ऐसा मानने भी लगे हैं।"

"तब मुझे वहाँ जाकर ख़ास बात क्या करनी चाहिए?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"सबसे ख़ास बात तो यही है कि हमें जो-कुछ लेना है वह धृतराष्ट्र चाचाजी की दया या उदारता से नहीं बल्कि महाराज पाण्डु के पुत्र होने की हैसियत से अधिकारपूर्वक लेना है, यह बात उन्हें साफ़-साफ़ समझा देनी चाहिए।" अर्जुन ने ज़ोर देकर कहा।

"लेकिन", श्रीकृष्ण बोले, "क्या दुर्योधन इस बात को स्वीकार करेगा? वर्षों से वह सत्ताधीश है, यह भूल न जाना चाहिए।"

"आपकी बात ठीक है। सत्ता बुरी चीज़ है। राजा यह भूल जाता है कि राजा की हैसियत से उसकी जो जिम्मेदारियाँ हैं उनको पूरा करने के लिए ही उसे अधिकार दिया जाता है, और आगे जाकर खुद सत्ता ही महत्त्व की चीज़ बन जाती है।

सभी राजतन्त्रों में ऐसा ही होता है। बेन जैसे राजा को शायद इसीलिए पदभ्रष्ट होना पड़ा। दुर्योधन को भी अपनी सत्ता छोड़नी ही पड़ेगी, फिर वह चाहे समझ-बूझकर ऐसा करे या लड़-भिड़कर करे।"

"लेकिन युद्ध के सब परिणामों को तुमने भलीभाँति सोच लिया है?" श्रीकृष्ण बोले।

"युद्ध के परिणाम महाराज युधिष्ठिर कहते हैं वैसे ही अनिष्ट होंगे, इसमें मुझे ज़रा भी शंका नहीं है। युद्ध होने पर करोड़ों क्षत्रिय रणभूमि की धूल चाटेंगे; कितने ही कुलों का युद्ध में समूल नाश होजायगा; कितनी ही स्त्रियाँ विधवा होजायँगी; कितने ही क्षत्रिय बालक निराधार होजायँगे; सारी प्रजा में अव्य-वस्था फैल जायगी; चोर-डाकुओं का त्रास बढ़ जायगा; व्यापार की अपार हानि होगी; और लोगों के मनों में लड़ाई का नशा ऐसा छा जायगा कि लड़ाई ख़त्म होजाने के बाद भी कुछ समय तक समाज में वही रंग बना रहेगा। इन सब परिणामों को मैं जानता हूँ, लेकिन यह अनिवार्य है। युद्ध होने पर कुछ समय तक तो मनुष्य अपनी मानसिक स्थिरता को खो देंगे, और उसके स्थिर होने तक समाज में अनेक बार उथल-पुथल होगी; परन्तु ईश्वर के इस जगत् में ऐसी उलटा-पलटी और स्थिरता-अस्थिरता होती ही रहती है, ऐसा भीष्म पितामह से मैंने समझा है। इस-लिए अपने परम्परागत अधिकार के लिए लड़ना भी पड़े तो मुझे उसमें कोई अड़चन मालूम नहीं पड़ती।" अर्जुन ने जवाब दिया।

"तो फिर, जैसा भीमसेन ने कहा है, सीधे लड़ाई की ही बात रक्खूँ?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"नहीं।" अर्जुन ने टोका, "भीमसेन जो कहता है वह ठीक नहीं है। श्रीकृष्ण! भीष्म पितामह ने मुझे जो-कुछ सिखलाया है उसपर से तो ऐसा लगता है कि दुर्योधन, युधिष्ठिर या श्रीकृष्ण हस्तिनापुर की प्रजा के भविष्य का निश्चय करनेवाले कौन होते हैं? हम स्वार्थी लोग अपने खुद के स्वार्थ से प्रेरित होकर सारी जनता को लड़ाई में झोंकें और लड़ाई में मरने को स्वर्ग का द्वार बतायें, ऐसे शैतान भला और कौन हो सकते हैं? राजा या साम्राज्य का यह प्रश्न ऐसा खोखला है कि जन-समाज के जागृत होते ही बड़े-बड़े साम्राज्य चकनाचूर हो जावेंगे। ऐसा समय एक दिन ज़रूर आनेवाला है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि हमारा यह आपसी झगड़ा निर्दोष प्रजा का ख़ून बहाये बग़ैर ही मिट जाय तो अच्छा हो। भीमसेन तो किसी भी तरह लड़ाई ही चाहता है। मैं सम्मानपूर्वक अपना हक़ माँगता हूँ, लेकिन उस हक़ के लिए लड़ना पड़े तो उसके लिए भी तैयार हूँ।"

"तुम्हारी बात भी ठीक है। अच्छा तो भीष्म पितामह या द्रोणाचार्य से क्या कहा जाय?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"पहले तो धृतराष्ट्र चाचा से मिलिए। मेरी ओर से उनसे कहिए कि आप तो कौरव-पाण्डवों दोनों के ही हितों के संरक्षक हैं। पाण्डु महाराज हमें आपके भरोसे छोड़ गये हैं। संरक्षक में ख़ुदग़र्ज़ी नहीं होनी चाहिए। जो आदमी कुटुम्ब के अन्दर भी

अपने ही स्वार्थ को प्रधानता नहीं देता उसीका बड़प्पन यशस्वी होता है। आपने हमारे और कौरवों के बीच भेद किया है, इससे आपके बड़प्पन को बट्टा लगा है। युधिष्ठिर पुराने विचारों को मानकर आपको अब भी अपना बड़ा-बूढ़ा मानते हैं; लेकिन मेरी समझ में तो आप जैसे स्वार्थी बड़े-बूढ़े मार डालने के लायक़ हैं। भीष्म और द्रोण से मेरा प्रणाम कहना। इन दोनों के चरणों में बैठकर मैंने जो-कुछ सीखा है उसके लिए उनका सदा ऋणी हूँ। लेकिन श्रीकृष्ण, दोनों को जता देना कि जीवन-मरण के अवसर पर जो आदमी अपने विचार प्रकट करके ही बैठा रहे और उन विचारों पर अमल न करे, वह हतवीर्य है और इसलिए दया का पात्र है। यह मैं जानता हूँ कि आप दोनों का हमारी ओर झुकाव है; आपके हृदय हमारा भला देखकर प्रसन्न होते हैं, यह भी मैं अच्छी तरह समझता हूँ; लेकिन जहाँ घोर अन्याय और स्पष्ट अधर्म होरहा हो वहाँ मनुष्य की क्षात्रवृत्ति अनायास ही जागृत न होजाय, तो फिर वह क्षत्रिय कैसा? दुर्योधन का अन्याय देखते हुए भी आप उसका साथ दे रहे हैं, इसीसे प्रकट है कि दिल से आप उसके ही साथ हैं और इसी बूते पर सारी कौरव-सेना नाच रही है।" अर्जुन ने अपने जी का ग़ुबार निकाला।

"किसी और से भी कुछ कहना है?" श्रीकृष्ण ने और पूछा।

"यों तो बहुतों का ध्यान आता है। दुर्योधन है, कर्ण है, दुःशासन है, विदुर चाचा भी हैं; लेकिन उनसे किसीसे कुछ

नहीं कहना। मैं समझता हूँ कि आज ऐसे संदेशों का कोई अर्थ नहीं है। वातावरण में युद्ध की लहरें हिलोरें मार रही हैं, और सब एक या दूसरी रीति से लड़ना ही चाहते हैं। खुद आपसे भी शान्ति हो सके, ऐसा मुझे नहीं लगता। फिर भी एक बार कोशिश कर देखिए। मुझे तो यह भी लगता है कि आप-जैसों के प्रयत्नों से कौरव यही समझेंगे कि पाण्डव लड़ाई की ख़ाली बातें करके ही जो-कुछ मिले वह लेलेना चाहते हैं। इसलिए मेरा अपना मत तो यह भी होरहा है कि एक बार दो-दो हाथ बताये बग़ैर कौरवों को होश नहीं आना।" अर्जुन बोला।

"मैं भी तो यही कहता हूँ! युद्ध करो तो वे ख़ुद ही नाकें रगड़ते हुए सामने आयेंगे।" भीम ने दाँत पीसकर कहा।

"लेकिन मुझे जाना चाहिए, यह तो तय है न? संधि न हो तो भी हमारा तो कुछ बिगड़ेगा नहीं। अंतिम बार शान्ति और संधि के लिए प्रयत्न करके देख लें, जिससे मन को संतोष रहे। संधि होजाय तब तो लाभ है ही। इसलिए मैं तो कल ही जाऊँगा।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"ज़रूर। हमें तैयारी करने के लिए इतने दिन और मिल जायँगे, यह लाभ तो होगा ही। श्रीकृष्ण! मुझे जो-कुछ कहना था, वह मैंने आपको विस्तारपूर्वक कह दिया है; फिर भी इस सबके पीछे एक बात तो निश्चित ही है। हम भाइयों ने अपना सारा जीवन आपके हाथों में सौंप दिया है। इसीलिए जब दुर्योधन ने आपसे शस्त्रास्त्रों से सज्जित आपकी सेना माँगी, तब मैंने तो

शस्त्र-रहित आपको ही पहले से माँग लिया था। अपने विचार तो हमने आपको बता दिये। अब अन्त में मेरा कहना यही है कि हस्तिनापुर जाकर आप जो भी निश्चय कर लावें वह हम सबको पूरी तरह मान्य होगा। कहिए महाराज युधिष्ठिर, ठीक है न?" अर्जुन ने कहा।

"इसमें क्या शक है। हम सबने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार कह दिया; लेकिन ऐसे विषयों में कितनी ही बार आपको जो अन्तःस्फूर्ति होती है उसके आगे हम सबकी बुद्धि झख मारती है। श्रीकृष्ण! यह मैं खाली दिखावे के लिए ही नहीं कह रहा हूँ। जीवन में आनेवाली ऐसी-ऐसी अनेक उलझनों में आप जब अपने विचार बताते हैं तब ऐसा मालूम होता है कि मनुष्य के हृदय की गहराई में छिपा हुआ कोई महान् तत्त्व बाहर निकल रहा है, और शास्त्रों के निर्णयों को समझने में कुशल बुद्धि भी उन विचारों को समझने और उनका अनुसरण करने को ललचाती है। इसलिए अर्जुन जो कहता है वह बिलकुल ठीक है। आप जो भी निश्चय करके आवेंगे वह हम पाँचों भाइयों को शिरोधार्य होगा। क्यों भीमसेन? कहो नकुल-सहदेव, ठीक है न?"

"इसमें भी कहने की कोई बात है?" भीम बोला।

"हमें सब मंजूर है, मंजूर!" नकुल-सहदेव बोले।

दूसरे दिन सवेरे ही श्रीकृष्ण हस्तिनापुर के लिए रवाना हो गये।

× × ×

हिरण्यवती नदी के किनारे पाण्डवों ने अपना पड़ाव डाला। उसके लम्बे-चौड़े सफ़ाचट मैदान में उन्होंने अपनी छावनी की हद बनाई; और सारी छावनी के लिए एक बड़ा भारी प्रवेश-द्वार बनाया गया। इस छावनी में युद्ध के अलग-अलग विभागों की व्यवस्था की गई थी। छावनी के बीचोंबीच श्रीकृष्ण का डेरा लगाया गया, और श्रीकृष्ण के डेरे के चारों ओर पाँचों भाइयों तथा द्रौपदी के अलग-अलग तंबू थे। छावनी के एक भाग में प्रधान सेनापति धृष्टद्युम्न के लिए व्यवस्था की गई थी; एक ओर महारथियों तथा अतिथियों के अपनी-अपनी सेना के साथ ठहरने की व्यवस्था थी; एक ओर राजा द्रुपद और उनके पांचाल ठहरे हुए थे, और दूसरी ओर विराट और उनके मत्स्य डेरा डाले हुए थे।

भारतवर्ष के लगभग सभी राजा-महाराजा इस युद्ध में शामिल हुए थे। कोई पाण्डवों की ओर से तो कोई कौरवों की ओर से। कोई राजा-महाराजा अपनी सेना के साथ जब किसी पक्ष में शामिल होने के लिए आता तो छावनी के मुख्य द्वार पर उसका सत्कार करने के लिए भेरी-मृदंग बजते और छावनी के प्रधान अधिकारी उसका स्वागत करते थे।

भीष्मक राजा का पुत्र और रूक्मिणी का भाई रुक्मि कुण्डिनपुर से अपनी सागर जैसी विशाल सेना लेकर पाण्डवों की छावनी की ओर आया तो मुख्यद्वार पर उसके सत्कार के लिए भेरी और मृदंग का नाद हुआ और महाराज युधिष्ठिर उसका स्वागत करने के लिए बाहर आये।

"पधारिए ! पधारिए रुक्मी जी !" महाराज युधिष्ठिर ने स्वागत करते हुए कहा।

"महाराज ! आप सब अच्छी तरह तो हैं न ? अर्जुन तो अच्छी तरह हैं ?" रुक्मी ने पूछा।

"आप राजा-महाराजाओं की शुभेच्छा से हम सब अच्छी तरह हैं। आपने यहाँ आकर हमें बहुत आभारी किया है।" युधिष्ठिर ने कहा।

"इसमें तो मैंने कोई बड़ी बात नहीं की। आपके साथ ऐसा घोर अन्याय हो रहा हो तब भी आपका साथ न दें, तो फिर हम किस काम के ?" रुक्मी ने कहा।

"अच्छा, अब आप ज़रा आराम करके स्वस्थ हो लीजिए। आपके लिए शिविर तैयार है, और इस सेना के लिए भी व्यवस्था है ही। सहदेव ! आपके साथ जाकर सब व्यवस्था बता दो।" युधिष्ठिर ने कहा।

"पधारिए महाराज ! मैं तैयार हूँ।" सहदेव ने कहा।

"महाराज युधिष्ठिर ! मैं तो स्वस्थ ही हूँ। अपने शिविर में जाने से पहले मैं एक बात स्पष्ट कर लेना चाहता हूँ।" रुक्मी बोला।

"जो बात स्पष्ट करनी हो वह खुशी से कर लीजिए। यह आपका कुण्डिनपुर ही है, ऐसा समझकर यहाँ आज़ादी के साथ रहिए। किसी प्रकार का संकोच करने की कोई ज़रूरत नहीं है।" युधिष्ठिर ने कहा।

"देखिए, यह मेरा विजय नामक धनुष है। संसार में तीन ही ख़ास धनुष हैं—एक वरुण का गाण्डीव, दूसरा श्रीकृष्ण का शार्ङ्ग और तीसरा यह विजय। श्रीकृष्ण तो युद्ध में भाग लेंगे नहीं; पर मेरा यह अकेला विजय ही आपको विजय दिलाने में समर्थ है।" रुक्मी बोला।

"इसमें क्या शक है।" युधिष्ठिर ने कहा।

"निस्सन्देह! आप और आपके राजा-महाराजा सब आराम के साथ अपने-अपने तंबुओं में बैठे रहें, या चाहें तो वे सब अपने-अपने घर चले जायँ। मैं अकेला ही इस सारी कौरव-सेना को लड़ाई में खदेड़ दूँगा।" रुक्मी ने कहा।

"आपकी शक्ति से भला कौन अनभिज्ञ है!" युधिष्ठिर ने दाद देते हुए कहा।

"पर एक शर्त है। आपका यह अर्जुन मेरे पाँवों पर हाथ रखकर इतना कहदे, कि 'मैं भयभीत होगया हूँ, इसलिए आपकी शरण हूँ।' अर्जुन के इतना कह देने के बाद तो बस फिर रुक्मी है और यह सारी कौरव-सेना है। एक घड़ी में देखते-देखते युधिष्ठिर के सिर पर हस्तिनापुर का राजमुकुट चढ़ जायगा।" रुक्मी ने सीना फुलाकर कहा।

"आज आप आये कहाँसे हैं?" भीमसेन से न रहा गया।

"भीमसेन, ज़रा धीरज रक्खो।" अर्जुन ने भीम का हाथ दबाया।

"रुक्मीजी! पहले आप थोड़ा आराम करके स्वस्थ होलें,

उसके बाद हम सब मिलकर विचार कर लेंगे।" युधिष्ठिर ने शांतिपूर्वक कहा।

"मैं तो स्वस्थ ही हूँ। लेकिन इस एक बात का निर्णय हो जाय तो फिर मैं अपने शिविर में जाऊँ।" रुक्मी बोला।

"आपकी सहायता तो हमें ज़रूर ही चाहिए।" युधिष्ठिर ने कहा।

"नहीं, इस प्रकार नहीं। मैंने जैसे बताया उसी तरह यह अर्जुन मेरे पाँवों पर हाथ रखकर कहे।" रुक्मी ने ज़ोर देकर जताया।

"रुक्मीजी!" अर्जुन से न रहा गया, "आप एक बड़ी सेना लेकर हमारी सहायता के लिए आये हैं, इसके लिए हम आपके आभारी हैं। लेकिन माफ़ कीजिए, यह आशा तो आप स्वप्न में भी न रक्खें कि अर्जुन आपके चरणों पर हाथ रखकर यह कहेगा कि मैं भयभीत होगया हूँ। अर्जुन ने तो एकमात्र श्रीकृष्ण के चरणों पर ही अपना हाथ रक्खा है। उनके सिवाय अर्जुन तीन लोक में और किसी दूसरे के चरणों पर हाथ रक्खे, यह असम्भव है। 'मैं भयभीत हुआ हूँ' यह भला अर्जुन कैसे कहे? आपको शायद पता नहीं है कि विराटनगर में यह अर्जुन अकेला ही सारी कौरव-सेना के आगे कूद पड़ा था। अर्जुन पाण्डु का पुत्र और द्रोणाचार्य का शिष्य है। आपको शायद यह मालूम नहीं है कि अर्जुन की पीठ पर किसका हाथ है। रुक्मीजी! आप स्वस्थ होकर रहें तो हम आपको सिर-माथे पर रक्खेंगे; लेकिन अगर स्वस्थ न हो

सकें, तो जहाँ जाना हो वहाँ जाने के लिए आप स्वतंत्र हैं।"

"अर्जुन, अर्जुन! यह जान लो कि तुम्हारी मौत तुम्हें बुला रही है। तुम्हें मदद करने के लिए राजा-महाराजा तो आवेंगे; लेकिन दूसरा रुक्मी नहीं आवेगा, समझे! विजय धनुष को धारण करनेवाला रुक्मी अगर कौरवों के पक्ष में चला जायगा तो तुम लोगों की क्या हालत होगी, इसका भी कभी तुमने विचार किया है?" रुक्मी बोला।

"मुझे सहायता करने के लिए दूसरा रुक्मी तो शायद आजाय; लेकिन आये हुए रुक्मी को सच्चे वचन सुनानेवाला दूसरा अर्जुन शायद आपको नहीं मिलेगा। रुक्मी! याद रखना, तुममें जितना अभिमान है उससे दूना अभिमान मन में रखकर दुर्योधन इधर-उधर घूमता-फिरता है, इसीलिए वहाँ भी तुम्हें तो ऐसा ही सत्कार मिलेगा।" अर्जुन ने साफ़-साफ़ सुना दिया।

"दुर्योधन अगर तुम्हारे समान नादान होगा तो दूसरी बात है।"

यह कहकर फ़ौरन ही रुक्मी अपनी सेना के साथ पाण्डवों की छावनी को छोड़कर चल दिया।

: ८ :

धर्म संकट

महाभारत के युद्ध का दिन आख़िर आ ही पहुँचा और भगवान् सूर्यनारायण ने अठारह अक्षौहिणी सेना के ऊपर अपनी लाल आँखें डालीं।

दोनों ओर की सेनायें तैयार हो रही थीं; रथों के घोड़े अपने रथपतियों का वाहन बनने के लिए हिनहिना रहे थे। मदोन्मत्त हाथी अपनी सूँडों को इस प्रकार इधर-उधर हिला रहे थे मानों अपने शत्रुओं को खोजते हों। सुन्दर पोशाकों में सजे हुए सारथी अपने हाथ का चाबुक इधर-उधर हिलाते और फटकारते हुए, वाहन हाँकनेवालों की मनःस्थिति व्यक्त कर रहे थे। महावत हाथ में अंकुश पकड़कर इस तरह छाती ताने बैठे थे मानों विजय की चाबियाँ उन्हींके पास हैं। और असंख्य क्षत्रिय, वीर कोई तलवार खड़खड़ाते हुए, कोई गदा हिलाते हुए; कोई अपने धनुष को निहारते हुए; तो कोई तीर लगाने के पंखों को ठीक करते हुए, इधर-उधर घूम रहे थे। इनमें से कोई रणभूमि में मरकर स्वर्ग जाने की हविस रखता था तो कोई अपने किसी अबोध बालक की याद में उदास होरहा था। किसीकी सहानुभूति पाण्डवों के साथ थी तो किसीकी कौरवों के साथ। कोई अपनी प्रतिष्ठा के ख़याल से तो कोई भविष्य के किसी लाभ के लोभ से; कोई

धर्माधर्म के विवेक से तो कोई धर्माधर्म को समझ बिना युद्ध की घोषणा मात्र से, कोई आपसी संबंध के कारण तो कोई आपसी मैत्री के कारण, कोई जीवन से उकताकर तो कोई यौवन की उमंगों से उछलकर, ऐसे असंख्य क्षत्रिय वीर भारतवर्ष की इस सनातन रणभूमि में इस तरह घूम रहे थे मानों भारतवर्ष के भविष्य का निर्णय करने के लिए मानव-सागर में ज्वार ही न आगया हो। सारे भारतवर्ष में युद्ध का वातावरण ऐसा फैल गया कि स्वर्ण-सिंहासनों पर विराजनेवाले सिंहासनों पर न रह सके और कुटुम्बीजनों के साथ शांति से जीवन बितानेवाले बहुत इच्छा न होते हुए भी कुटुम्ब-जीवन की गाँठों को थोड़ी देर के लिए ढीली करके युद्ध के लिए चल पड़े।

कौरव-सेना की ओर से भीष्म पितामह आगे आये। उनके रथ में चार सफेद घोड़े जुड़े हुए थे। उनकी विशाल छाती पर बरफ़ के समान डाढ़ी फहरा रही थी, शुभ्र मस्तक पर मुकुट शोभायमान था, और हाथ में धनुष था। उनके रथ के चारों ओर द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, जयद्रथ, दुःशासन, शल्य आदि महारथी अपने-अपने रथों में सुशोभित थे। कर्ण वहाँ नहीं था; क्योंकि उसकी प्रतिज्ञा थी कि "जबतक भीष्म पितामह सेनापति रहेंगे तबतक मैं नहीं लड़ूँगा।"

पाण्डव सेना का सेनापति धृष्टद्युम्न था; लेकिन पाण्डव-सेना की विजय का आधार तो अर्जुन ही था। खाण्डवदाह के प्रसंग पर अग्नि ने अर्जुन के लिए जो वरुण का रथ ला दिया था, अर्जुन

उसी रथ में बैठा हुआ था। उसके रथपर हनुमान के चिह्नवाली ध्वजा फहरा रही थी। रथ के आगे यादववीर श्रीकृष्ण एक हाथ में घोड़े की रास और एक हाथ में चाबुक थामे बैठे हुए थे। श्रीकृष्ण के शरीर पर केसरिया रंग के रेशमी वस्त्र सुशोभित थे और गले में सुन्दर वनमाला थी। रथ के अन्दर अर्जुन हाथ में गाण्डीव लिये बैठा था और उसके पास वरुणदेव के दिये हुए दो अक्षय तरकस लटक रहे थे। अर्जुन के रथ के चारों ओर यज्ञकुण्ड में से पैदा हुआ द्रौपदी का भाई धृष्टद्युम्न तथा भीमसेन शिखंडी, द्रुपदराज, विराट राजा आदि अपने-अपने रथों में बैठे हुए थे।

इतने में भीष्म पितामह ने लड़ाई की शुरुआत का सूचक शंख बजाया। इसके बाद एक-एककर अनेक शंख बज उठे—ऐसे ज़ोर से कि आकाश फटने लगा।

इसी समय अर्जुन ने रथ में से श्रीकृष्ण से कहा, "महाराज श्रीकृष्ण! मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच ले जाकर खड़ा कीजिए, जिससे कि मैं यह देख सकूँ कि मुझे इस युद्ध में किस-किस के साथ लड़ना है।"

अर्जुन के सारथी श्रीकृष्ण ने रथ को दोनों सेनाओं के बीच लेजाकर खड़ा कर दिया और अर्जुन ने कौरव-सेना पर इधर-से-उधर तक एक लम्बी नज़र डाली।

एकाएक अर्जुन बोल उठा—"महाराज श्रीकृष्ण! जिनकी गोद में बचपन से खेला हूँ ऐसे मेरे पिता के भी दादा यह भीष्म, शिष्य-भाव से अनेक सेवायें करके जिनसे मैंने विद्या सीखी वह

द्रोणाचार्य; जिनके साथ गंगा के किनारे पर अनेकबार कुलामडंडे का खेल खेलते थे वे दुर्योधन और उसके भाई, मेरे गुरु का प्राण से भी प्यारा यह अश्वत्थामा; माता माद्री के भाई महाराज शल्य, एकसौ पाँच भाइयों की बहन दुःशला का पति सिंधुराज जयद्रथ; और जिनके अभी मूँछों की रेखायें भी नहीं आईं ऐसे मेरे ये भतीजे—इन सबको अपने सामने देखकर मेरे होश उड़े जा रहे हैं, मेरा शरीर पसीने-पसीने होरहा है, मुँह सूखा जा रहा है और गाण्डीव हाथ में से खिसक रहा है! जिनके साथ रहकर हम इस पृथ्वी के भोग भोगना चाहते हैं वे सभी तो मेरे सामने मौजूद हैं। श्रीकृष्ण! इन सबको मारकर इनके खून से सने हुए वभवों को भोगने की अपेक्षा मैं स्वयं ही कौरव-सेना के हाथों इस युद्ध में मारा जाऊँ, इसमें मुझे कहीं ज्यादा कल्याण दिखाई देता है।" यह कहकर अर्जुन ने गाण्डीव को नीचे रख दिया और रथ के पिछले हिस्से में चला गया।

शोक से विह्वल हुए अर्जुन से श्रीकृष्ण कहने लगे, "अर्जुन! यह ऐन मौके पर तुझे मोह कहाँसे आगया? हृदय की पामर निर्बलता को परित्याग कर तू उठ खड़ा हो।"

लेकिन अर्जुन ने उत्तर दिया—"भीष्म और द्रोण को कैसे मारूँ? इन लोगों को मारकर पृथ्वी के भोग भोगने की मुझे इच्छा नहीं है। साथ ही, श्रीकृष्ण, यह भी मेरी समझ में नहीं आरहा कि हमें विजय मिलना ठीक है या कौरवों को। मालूम होता है, मेरी बुद्धि कुंठित होगई है। हे यदुवीर! मेरा मन मूढ़

बन गया मालूम होता है। मुझमें सारासार का विवेक नहीं रह गया। प्यारे श्रीकृष्ण! मैंने आपको सिर्फ़ अपने रथ का सारथी ही नहीं माना है। आप तो मेरे सारे जीवन के सारथी हैं, यही समझें। हे सखा! मुझे मार्ग दिखाई नहीं दे रहा है, इसलिए आप मेरे अँधेरे मार्ग में प्रकाश कीजिए।" यह कहते-कहते अर्जुन का गला भर आया और उसका स्वर बहुत दीन होगया।

अर्जुन के रथ पर बैठे हुए श्रीकृष्ण मुस्कराते हुए बोले—"भाई अर्जुन! तेरे मुँह में पण्डित की भाषा तो है, लेकिन हृदय में पण्डित की विशुद्धि नहीं; बल्कि केवल पामरता और कमज़ोरी है। तेरी यह पामरता और कमज़ोरी ऐसी मनोहर भाषा ओढ़-कर बाहर आई है कि थोड़ी देर के लिए तुझे खुद को भी यह अच्छी दिखाई दे रही है; लेकिन तू ज़रा अपने हृदय में टटोलकर देखे तो तुझे खुद ही पता चल जायगा कि यह कमज़ोरी कितनी बेढंगी और बेडौल है।

"अर्जुन! तुझे भीष्म के साथ लड़ना है, यह क्या तुझे आज ही मालूम हुआ? युद्ध में गुरु द्रोण से तेरा मुक़ाबिला होगा, यह क्या आज ही तुझे कोई आकर कह गया है? तू तो यह सब पहले ही से जानता था, और तूने ही इन सबके खिलाफ़ युद्ध की घोषणा की है। तेरा यह सब ज्ञान एक ही पल में कहाँ चला गया?"

अर्जुन ने जवाब दिया—"श्रीकृष्ण! जब मैंने यह घोषणा की थी तब युद्ध का क्षेत्र प्रत्यक्ष नहीं था। आज तो यह सब मेरी आँखों के सामने खड़ा हुआ है।"

श्रीकृष्ण फिर ज़ोर से हँसे और बोले—"वाह गाण्डीवधारी अर्जुन, धन्य है तुझे ! अरे, विराट राजा का पुत्र इस प्रकार कहे तो चल सकता है; लेकिन कुन्ती का पुत्र इस प्रकार बोले तो कैसे काम चलेगा ? यह भी क्या संभव है कि अर्जुन ने कोई प्रत्यक्ष युद्ध ही नहीं देखा या किया हो ? अरे, तू तो संग्राम की गोदी में ही पला और बड़ा हुआ है।"

"तो भी, जब मनुष्य को अपना उठाया हुआ क़दम ठीक न लगे, तब क्या उसी समय उसे पीछे हटाने का अधिकार नहीं है ?" अर्जुन ने पूछा।

"ज़रूर है। और ऐसे मौक़े पर सारी दुनिया का विरोध सहकर भी, चाहे जितना जोखिम उठाकर भी, मनुष्य पीछे हटे इसीमें उसकी वीरता है। लेकिन अर्जुन ! तू जितना अपने हृदय को नहीं पहचानता उतना मैं तेरे हृदय को पहचानता हूँ। जीवन में बहुत बार मनुष्य अपने मन को नहीं पहचान पाता। इसलिए ऊपर से कुछ चाहता है, जबकि उसके अन्तर की गहराई में कोई दूसरी ही इच्छा होती है। अर्जुन ! ऐसी बात नहीं है कि तुझे यह युद्ध अच्छा नहीं लगता। तू अपने सारे जीवन पर एक नज़र डालकर देख, तो तुझे पता लगेगा कि इस युद्ध के लिए ही तो तूने अपने जीवन-भर तैयारियाँ की हैं। द्रोण के पास से तूने अस्त्र-विद्या सीखी और उनसे श्रेष्ठ शिष्य का वरदान पाया, उसके बाद द्रुपद को बाँधकर द्रोण की गुरु-दक्षिणा दी। किसी गूढ़ ईश्वरी संकेत के लिए ही यज्ञ-कुण्ड में से निकली हुई द्रौपदी

को स्वयंवर में प्राप्त किया। मेरे साथ रहकर खाण्डव वन जलाया, तब अग्निदेव ने तुझे यह रथ, यह अक्षय तरकस और यह गाण्डीव दिया था, इसकी याद है ? वरुणदेव यह सब साधन तुझे दें, इसका अर्थ क्या तू नहीं समझा ? वनवास के समय तू कैलास पर गया और भगवान शंकर ने तुझे पाशुपतास्त्र दिया। अर्जुन ! तुझे मालूम होगया होगा कि तेरे पिता इन्द्र ने तेरे लिए कर्ण के कवच-कुण्डल माँग लिये हैं। इन सबका एक ही अर्थ है, और वह यह कि जगत् में जिस महासंहार की घड़ियाँ बीत रही हैं उसका तू नायक है और आज तक का तेरा सारा जीवन इस नायकपद की तैयारी मात्र था। आज इस क्षणिक मोह से तू अगर लड़ना छोड़ देगा, तो तेरे दिल का एक अरमान रह जायगा और तेरा जीवन आत्मतृप्ति नहीं प्राप्त करेगा।"

अर्जुन रथ के पिछले हिस्से से ज़रा आगे आया और बोला—"श्रीकृष्ण ! मैं अस्त्र के प्रयोगों से भीष्म और द्रोण को मारूँ, इसके बजाय क्या यह अच्छा न होगा कि मैं शस्त्रों का ही त्याग कर दूँ और ये लोग मुझे मार डालें ?"

श्रीकृष्ण फिर बोले—"सखा ! तू अपनी बात जिस तरह से कहता है उस तरह तो नहीं, लेकिन दूसरी तरह से ठीक है और ज्यादा अच्छी है। मनुष्य दूसरों को मारकर विजय प्राप्त करे, उसके बजाय खुद मरकर विजय प्राप्त करे यह बहुत ऊँची बात है, लेकिन अर्जुन ! इस ज़माने में अभी लोग हिंसा में इतने आगे नहीं बढ़े हैं कि हिंसा और हिंसा के युद्ध से थक गये हों। हिंसा-

हीन युद्ध ईश्वर की सृष्टि में असंभव नहीं है; लेकिन उसे संभव बनाने के लिए लोगों की मनोवृत्ति और समाज की भावना एक ख़ास तरह से ढलनी चाहिए। आज तो लोकमानस उस ओर नज़र भी नहीं डालता, न ऐसी भावना को जागृत करनेवाले महान् पुरुष अभी पृथ्वी पर दिखाई पड़ते हैं। आज जब तू मरने की बात कहता है, तबभी तेरे मन में ऐसी बात तो है नहीं कि मारने की बनिस्बत मरने में ज्यादा वीरता है। तू तो अपने हृदय की एक भावना के वशीभूत होकर हृदय की उस उलझन को सुलझाने के लिए मरने की बातें करता है। यही तेरी कमज़ोरी है, इसमें मुझे कोई शक नहीं है।"

"तो कृष्ण! हृदय की इस परेशानी का समाधान हुए बिना तो मुझसे यह गांडीव पकड़ा नहीं जायगा।" अर्जुन ने कहा।

"यह मैं सब समझता हूँ। तुझे युद्ध के अन्त में विजय के सब परिणाम तो चाहिएँ; पर विजय-प्राप्ति में भीष्म और द्रोण जैसे बुज़ुर्गों को मारने की लोकलाज से तू बचना चाहता है। अच्छा, अर्जुन! एक सच्चा रास्ता बताऊँ? देख, इस सारी कौरव-सेना और इसके स्वामी दुर्योधन आदि को अपना दुश्मन मानकर तू लड़ने आया है। ये सब तेरे भाई और सगे सम्बन्धी हैं, इस विचार से तू हिचक गया हो, तो तुझे युद्ध का अपना सारा दृष्टिकोण बदल लेना चाहिए। तुझे समझना चाहिए कि तेरा यह युद्ध भीष्म, द्रोण या दुर्योधन के ख़िलाफ़ नहीं है। तेरा युद्ध तो दुर्योधन के अन्याय के ख़िलाफ़ है, इसलिए दुर्योधन के अन्याय में शामिल

होनेवाले भीष्म और द्रोण के भी अन्याय के ख़िलाफ़ है। यह ठीक है कि दुर्योधन तेरा भाई है, भीष्म तेरे पितामह हैं, और द्रोण तेरे गुरु हैं; पर मैं तो कहता हूँ कि मनुष्यमात्र मनुष्य का भाई है, यह विचार दृढ़ करके यह समझ ले कि तुझे मनुष्य के ख़िलाफ़ नहीं बल्कि उसके अधर्म के ख़िलाफ़ लड़ना है।" श्रीकृष्ण ने समझाया।

"सखा! श्रीकृष्ण! और कहिए।" अर्जुन की जिज्ञासा बढ़ रही थी।

"अन्याय और अधर्म के ख़िलाफ़ लड़ना क्या क्षत्रियों का परमधर्म नहीं है? इस अन्याय का पक्षपाती अगर भीमसेन हो तो उससे भी लड़ना चाहिए और दुर्योधन हो तो उससे भी लड़ना चाहिए।" श्रीकृष्ण बोले।

"भीष्म, द्रोण, दुर्योधन आदि को युद्ध में मारकर भी?"

"हाँ, उन्हें भी मारकर। जिस मनुष्य के द्वारा समाज में अन्याय या अधर्म फैलता हो, उसका बध करना सच पूछो तो उसीका कल्याण करना है। और सारे संसार का तो वह कल्याण है ही। संसार के और अपने कल्याण की ख़ातिर पाँच, पचास, सौ, दो सौ, हजार या लाखों शरीरों का नाश हो तो भी कोई बात नहीं है।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"श्रीकृष्ण! आप जो-कुछ कह रहे हैं वह समझ में तो ठीक-ठीक आरहा है। लेकिन," अर्जुन ने पूछा, "यह कैसे हो सकता है कि दुर्योधन के अधर्म पर प्रकोप हो और दुर्योधन पर प्रकोप न हो? ऐसी स्थिति कब आ सकती है?"

"अर्जुन!" श्रीकृष्ण ने कहा, "तेरी बात ठीक है। मनुष्य जबतक किसी काम में तल्लीन होकर लग नहीं जाता तबतक यह कठिनाई तो रहेगी ही। इसीलिए धर्मशास्त्रों में कहा है कि कर्म करो, लेकिन उसका फल ईश्वर पर छोड़ दो। तू भी इसी प्रकार युद्ध कर। अपनी कमज़ोरी को दूर कर, और अन्त में क्या होगा—जय होगी या पराजय, लाभ होगा या हानि, यह सब ईश्वर के ऊपर छोड़ दे। तेरे हृदय की शांति के लिए यही एकमात्र सच्चा मार्ग है। तू लड़ना बंद करके भाग जायगा तो उससे तो तेरी अन्तर्वेदना उलटे और बढ़ेगी, और उस वेदना के कारण शायद तू आत्महत्या करने पर भी उतारू होजाय।"

"सखा श्रीकृष्ण! आप ठीक कहते हैं। मैं लड़े बिना नहीं रह सकता, यह बिलकुल सच है। आपने अनासक्त भाव से युद्ध करने का जो उपदेश दिया वह मैं अपनी बुद्धि से तो समझ सकता हूँ, लेकिन इस युद्ध में उसपर अमल कैसे होगा यह मैं कह नहीं सकता। फिर भी, मेरे जीवन के सारथी श्रीकृष्ण, इस युद्ध में मैं वैसा करने का प्रयत्न तो करूँगा ही। 'मनुष्य कर्ममात्र का अधिकारी है, उसके परिणाम का नहीं।' यह जीवन-सूत्र अगर समझ में आजाय तब तो मनुष्य निहाल ही होगया समझो।" अर्जुन ने कहा।

"तो अर्जुन! उठ, गाण्डीव को हाथ में ले। देख, भीष्म पितामह धनुष की टंकार करते हुए तेरी तरफ़ आरहे हैं। याद रख, युद्ध की विजय का दारोमदार अर्जुन के ही ऊपर है।" श्रीकृष्ण बोले,

और लगाम खींचकर रथ को भीष्म के रथ के ठीक सामने ला खड़ा किया।

गाण्डीवधारी अर्जुन तनकर बैठ गया। गाण्डीव को उसने हाथ में ले लिया और संहारकाल की अग्नि के समान भीष्म की ओर बढ़ा।

: ९ :

कुरुक्षेत्र के मैदान में

कुरुक्षेत्र के मैदान पर नौ-नौ बार सूर्य उदय होकर अस्त होगया। नो-नौ भयंकर रातें बीत गईं। भीष्म और अर्जुन, दुर्योधन और भीमसेन, सात्यकि और अश्वत्थामा, द्रोण और द्रुपद नौ-नौ दिन तक एक-दूसरे के सामने जूझते रहे। पर युद्ध का अंत तो आता ही नहीं था।

इन नौ दिनों में पितामह भीष्म ने पाण्डव-सेना में त्राहि-त्राहि मचादी। सरदी के दिनों में जैसे किसी जंगल में दावानल सुलग उठे और सूखे हुए घास को भस्म करदे; उसी प्रकार भीष्म ने पाण्डवों की सारी सेना को ख़ाक़ में मिला दिया। अकेले भीष्म के ही हाथों हर रोज़ दस हज़ार सैनिक स्वर्ग में जाते। जवान अर्जुन पाण्डव-सेना के आगे रहकर लड़ता; लेकिन बूढ़े पितामह के वेग को रोकने में वह असमर्थ था। भीष्म ने अपने सारे जीवनभर ब्रह्मचर्य का पालन करके जो शक्ति हासिल की थी वह सब इस लड़ाई में लगा दी और श्रीकृष्ण जैसे राजनीतिज्ञों को भी चक्कर में डाल दिया। श्रीकृष्ण का संकल्प था कि वह इस युद्ध में शस्त्र न लेंगे; पर इतनों दिनों में दो बार भीष्म ने अर्जुन पर ऐसा धावा बोला कि श्रीकृष्ण-जैसे धीर-गंभीर पुरुष भी अपनी प्रतिज्ञा को भूलकर भीष्म के सामने चक्र लेकर दौड़ उठे।

दसवें दिन का सवेरा हुआ और गाण्डीवधारी अर्जुन रथ में बैठकर पाण्डव-सेना के आगे आया।

"सखा अर्जुन !" श्रीकृष्ण ने कहा, "अब तो हद होरही है। आज तो तुझे भीष्म को चाहे जैसे ख़त्म करना ही चाहिए।"

"श्रीकृष्ण ! मैं अपनी कोशिश में तो कोई कसर रखता नहीं। पर युद्ध में तो भीष्म पितामह का साक्षात शंकर भी मुक़ाबिला नहीं कर सकते; फिर मेरा तो बस ही क्या है ?" अर्जुन ने कहा।

"सखा अर्जुन, यह तेरी भूल है। तू ख़ुद पाण्डुराजा का पुत्र और द्रोणाचार्य का शिष्य है। शंकर तथा इन्द्र ने तुझे वरदान दिये हैं। इसलिए तेरी शक्ति भीष्म की शक्ति से किसी प्रकार कम नहीं है। तुझे अपनी शक्ति का भान नहीं है, इसीलिए भीष्म को रथ में बैठे देखकर ही तू हिम्मत हार जाता है, और 'भला इन भीष्म का मुक़ाबिला मैं कैसे कर सकता हूँ ?' इस विचार से तेरा गाण्डीव ढीला पड़ जाता है। लेकिन अर्जुन ! यह निश्चय जान कि युद्ध में तुझे विजय प्राप्त करनी है, और भीष्म को मारे बग़ैर विजय की आशा ही व्यर्थ है। इसलिए आज पूरी तरह तैयार हो जा।" श्रीकृष्ण ने अर्जुन को हिम्मत बँधाई।

"लेकिन श्रीकृष्ण !........."

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। सिर्फ़ यही बात ध्यान में रख, कि भीष्म को मारना है। भीष्म चाहे जैसे वीर हों, फिर भी आख़िर वृद्ध ही हैं। तेरे जैसा जवानों का जोश और बल उनके हाथों में

कहाँ ? फिर भी आज तू शिखण्डी को उनके सामने रखना।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"शिखण्डी को ?"

"हाँ। यह शिखण्डी पहले शिखण्डिनी नाम की स्त्री थी; पर बाद में पुरुष बन गया। द्रुपद राजा के इस पुत्र को भीष्म अच्छी तरह पहचानते हैं। स्त्री से युद्ध न करने की भीष्म की प्रतिज्ञा है। ऐसा भीष्म ने ही कई बार स्वयं कहा है। इसलिए तू शिखण्डी को आगे रखकर भीष्म के ऊपर तीर चला।" श्रीकृष्ण बोले।

"श्रीकृष्ण, इसमें अर्जुन का क्या पराक्रम हुआ ?" अर्जुन ने पूछा।

"अर्जुन ! अगर तुझे विजय प्राप्त करनी हो, तो भीष्म को मारने में ही कल्याण है। शिखण्डी को आगे किये बिना भीष्म को मारना मुश्किल है। ऐसे नाज़ुक मौक़े पर मनुष्य को अपना निर्णय जल्दी ही करना चाहिए। कौन-सा क़दम आगे रखना और कौन-सा पीछे, इस विचार में जो झूलता रहता है वह लाखों मनुष्यों का भविष्य अपने हाथ में रक्खे यह उचित नहीं है।" श्रीकृष्ण ने दृढ़तापूर्वक जताया।

"अच्छी बात है। तो आज मैं भीष्म को मारूँगा।" अर्जुन ने कहा।

"इस तरह बेहिम्मती से मत बोल। दिल में पूरा निश्चय करले।" श्रीकृष्ण ने अर्जुन को और प्रोत्साहन दिया।

"श्रीकृष्ण ! मैं बेहिम्मती से नहीं कहता। मैं आपको अपना

दृढ़ निश्चय बताता हूँ कि आज मैं भीष्म को जरूर रणभूमि में सुलाऊँगा।" अर्जुन ने जताया।

"तो फिर शिखण्डी के रथ को आगे करके अपने गाण्डीव से तीर चला।"

यह कहकर श्रीकृष्ण अर्जुन का रथ भीष्म के रथ के सामने ले आये और युद्ध शुरू हुआ।

× × ×

भीष्म पितामह की मृत्यु के बाद दुर्योधन ने द्रोणाचार्य को सेनापति बनाया। द्रोणाचार्य ने पाँच दिन तक कौरव-सेना का नेतृत्व किया। इन पाँचों दिनों के बीच दुर्योधन ने यह चाल चली कि द्रोणाचार्य युधिष्ठिर को ज़िन्दा पकड़कर कौरवों के सुपुर्द करदें तो युधिष्ठिर और उनके चारों भाई फिर लम्बे समय के लिए बनवास सेवन करें और दुर्योधन युद्ध में लाखों मनुष्यों की जानें गँवाये बिना हस्तिनापुर का सम्राट् बना रहे। द्रोणाचार्य को दुर्योधन की इस चाल के सफल होने में संदेह था, फिर भी उसे आजमा देखने के लिए वह राज़ी थे। इसलिए अर्जुन को कुरुक्षेत्र के युद्ध से थोड़ी दूर भटकाकर काम निकालने का उन्होंने निश्चय किया। कौरव-सेना में त्रिगर्त लोग अपने राजा के साथ युद्ध में शामिल हुए थे। उन्होंने कुरुक्षेत्र से कुछ दूरी पर अलग ही एक युद्ध शुरू किया और अर्जुन को ललकारकर उधर ले गये। इधर पाण्डव-सेना अर्जुन के बग़ैर ही द्रोण से लोहा ले रही थी।

× × ×

एक दिन शाम को त्रिगर्तों का पराजय करके अर्जुन तथा श्रीकृष्ण अपनी छावनी में लौट रहे थे।

"श्रीकृष्ण !" रास्ते में अर्जुन ने पूछा, "आज हमने त्रिगर्तों का पराजय किया, उसके लिए मुझे आनंद होना चाहिए था, उसके बदले मेरा हृदय बहुत भारी क्यों मालूम पड़ता है ?"

"कई बार ऐसा होता है कि भविष्य में होने वाली कोई घटना इस रूप में अपनी छाया मनुष्य के दिल पर डाला करती है कि मनुष्य उसे समझ नहीं पाता।" श्रीकृष्ण ने जवाब दिया।

"आप ठीक कहते हैं। रथ को ज़रा जल्दी चलाइए। हमारी छावनी में सब सुरक्षित तो होंगे न ?" अर्जुन ने पूछा।

"सखा अर्जुन ! युद्ध का मामला है, इसलिए कुछ कह नहीं सकते।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"छावनी तो यह आगई। लेकिन आज यह सब इतना सूना-सूना क्यों दिखाई देता है ? हम लोग रोज़ वापस आते तब अभिमन्यु हमारे सामने आता हुआ दिखाई देता था। आज तो वह भी नहीं दिखाई देता ! सारी छावनी में मानों मृत्यु की शांति विराज रही है, ऐसा मालूम पड़ता है।" अर्जुन दबे हृदय से बोलने लगा।

"सखा ! ज़रूर कुछ-न-कुछ गड़बड़ी हुई है।" श्रीकृष्ण बोले।

और इतने में रथ के घोड़े तंबू के द्वार के पास आ पहुँचे। अर्जुन रथ से नीचे उतरा, उसके पीछे श्रीकृष्ण भी उतरे; और दोनों तंबू में गये।

तंबू के अन्दर युधिष्ठिर आदि ख़ामोश बैठे थे। उनके चेहरे उतरे हुए थे, सिर नीचे झुक रहे थे, आँखें ज़मीन में गड़ी जा रही थीं, हाथ-पैर मानों ठिठुर गये थे; उनके सारे अंग बिलकुल ढीले पड़ रहे थे। अर्जुन और श्रीकृष्ण आकर बैठे, लेकिन कोई कुछ बोला नहीं। अर्जुन ने चारों तरफ़ एक नज़र डाली और तंबू की शांति को चीरता हुआ बोला, "महाराज युधिष्ठिर! आज आप सब लोग किसलिए शोक कर रहे हैं? क्या आचार्य ने हमारे किसी महारथी को हना है? भीमसेन! तुम आज अपना वह अदम्य उत्साह कहाँ गुमा बैठे हो? नकुल-सहदेव! हमारा अभिमन्यु आज क्यों नज़र नहीं आ रहा है? महाराज! उत्तर दीजिए। आप बोलते क्यों नहीं?"

"भाई अर्जुन! किस मुँह से बोलूँ? एक महारथी नहीं मारा गया, बल्कि हम सब मारे गये हैं।" युधिष्ठिर बोले।

"हुआ क्या, यह तो साफ़-साफ़ बताइए न?" अर्जुन अधीर होगया।

"हम लोगों ने अभिमन्यु को गंवा दिया!" भीमसेन ने हिम्मत करके कहा।

"एं! सच कहते हो? मेरा अभिमन्यु! इन श्रीकृष्ण का भांजा? सुभद्रा का पुत्र अभिन्यु!" अर्जुन एकदम सटपटा गया। "श्रीकृष्ण! अपने रास्ते में ही अपशकुन हो रहा था। युधिष्ठिर! मेरी ज़रासी ग़ैरहाज़िरी में तुम एक अभिमन्यु को भी नहीं बचा सके? भीमसेन, भीमसेन! तुम सब लोग जी रहे थे, फिर भी

अभिमन्यु को आगे करते हुए शर्म नहीं आई ? मेरे इस प्यारे बेटे को किसने मारा ?" अर्जुन विह्वल होगया ।

"महाराज युधिष्ठिर ! ऐसी क्या बात हो गई, जिससे अभिमन्यु मारा गया ?" श्रीकृष्ण ने पूछा ।

"महाराज श्रीकृष्ण ! आप और अर्जुन त्रिगर्तों से लड़ने गये, उसके बाद आचार्य ने चक्रव्यूह बनाया । हममेंसे किसीको भी चक्रव्यूह तोड़ना नहीं आता था । यह तो सिर्फ़ अर्जुन ही जानता है, या फिर अभिमन्यु जानता था ।" युधिष्ठिर बोले ।

"हाँ, मैंने अभिमन्यु को यह विद्या सिखाई थी ।" अर्जुन बीच में ही बोल उठा ।

"फिर ?" श्रीकृष्ण ने पूछा ।

"इस कारण हमने चक्रव्यूह को तोड़ने के लिए अभिमन्यु को आगे किया ।" युधिष्ठिर बोले ।

"अभिमन्यु को छः द्वार ही तोड़ना आता था, सातवाँ नहीं, यह क्या आपको मालूम नहीं था ?" अर्जुन ने पूछा ।

"जानते थे । लेकिन एक बार अभिमन्यु अगर रास्ता खोलदे तो मैं फिर उसके पीछे होजाऊँ और सबको बिखेर दूँगा, ऐसी मेरी धारणा थी ।" भीम बोला ।

"तो फिर तुम अभिमन्यु के पीछे गये ?" श्रीकृष्ण ने पूछा ।

"गये तो सही ।" भीम बोला ।

"तो फिर ?" अर्जुन उतावला हो रहा था ।

"लेकिन सिन्धुराज जयद्रथ ने हमें रास्ते में रोक लिया।" भीम बोला।

"जयद्रथ ने ? द्वैतवन में जिसे जिन्दा जाने दिया गया उसी जयद्रथ ने ?" अर्जुन ने पूछा।

"हाँ, उसी जयद्रथ ने। हम सबने बहुत कोशिश की, लेकिन जयद्रथ को हम हरा नहीं सके।" भीम शर्माते हुए बोला।

"तो फिर प्यारा अभिमन्यु वापस ही नहीं लौटा ?" अर्जुन ने पूछा।

"लौटता कैसे ? व्यूह में तो अभिमन्यु ने चारों ओर त्राहि-त्राहि मचादी; लेकिन जहाँ एक अभिमन्यु के सामने छः महारथी इकट्ठे हों, वहाँ वह अकेला बालक क्या करे ? आख़िर वह शेर का बच्चा हज़ारों को मारकर पृथ्वी पर लेट गया और मेरे कलेजे में छुरी भोंकता गया।" युधिष्ठिर बोले।

"भाइयो ! सुनो ! जिस जयद्रथ ने मेरे प्यारे अभिमन्यु के पीछे जाते हुए भीमसेन आदि को रोका और इस वजह से मेरे वीर पुत्र की मृत्यु का कारण हुआ, उस जयद्रथ को मैं कल सूर्यास्त के पहले मार डालूँगा। ऐसा न हुआ तो मैं स्वयं चिता में आग लगाकर जल मरूँगा !" अर्जुन ने प्रतिज्ञा की।

"धीरज रक्खो, अर्जुन, ज़रा शान्ति से काम लो।" श्रीकृष्ण बोले।

"प्यारे श्रीकृष्ण ! शान्ति कैसे रक्खूँ ? मेरे लिए तो सारा संसार ज़हर के समान होगया, और आप शान्त रहने को

कहते हैं! भला सुभद्रा मुझे क्या कहेगी? और बेटी उत्तरा से मैं क्या कहूँगा?" अर्जुन आवेश में बोल रहा था।

"यह तो युद्ध है।" श्रीकृष्ण बोले, "और उसमें शांति रखनी ही पड़ती है। सुभद्रा का तो सिर्फ़ एक ही अभिमन्यु गया, लेकिन कितनी ही सुभद्राओं ने इस युद्ध में न जाने अपने कितने अभिमन्युओं को गँवाया होगा, यह भी सोचना चाहिए न?" श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया और "चलो, अब सुभद्रा के पास चलें।" कहकर वह अर्जुन को सुभद्रा के पास लेगये।

× × ×

सुबह-ही-सुबह रथ को लड़ाई के मैदान में आगे लाते हुए श्रीकृष्ण बोले, "अर्जुन! इसीलिए तो मैं कहता था कि गम्भीर प्रतिज्ञायें करने से पहले खूब विचार कर लेना चाहिए। गुप्त-चरों की बातें सुनीं न?"

"सुनीं तो। लेकिन इससे क्या हुआ?" अर्जुन बोला।

"हो तो सब कुछ गया! जयद्रथ तो रातोंरात सिंधु देश भाग जाने के लिए तैयार होगया था, लेकिन द्रोणाचार्य ने उसे अभयदान देकर रोक लिया है; इसलिए आज सारे कौरव अकेले जयद्रथ को बचाने में ही लगेंगे और उसे सबसे पीछे रक्खेंगे।" श्रीकृष्ण बोले।

"रखने दो सबसे पीछे!" अर्जुन बोला।

"अर्जुन! यह कहना आसान है। पर क्या तू यह मानता है कि द्रोण के सेनापति रहते हुए तू आज एक ही दिन में सारी कौरव-

सेना का संहार करके जयद्रथ के पास पहुँच जायगा ?" श्रीकृष्ण ज़रा गरम होकर बोले, "शत्रु के बल की उपेक्षा करने में वीरता नहीं है।"

"तो फिर सूर्यास्त के बाद चिता पर चढ़ जाऊँगा।" अर्जुन बोला, "अभिमन्यु के चले जाने से जीवन में स्वाद ही क्या रह गया है ?"

श्रीकृष्ण जरा गुस्से में आकर बोले – "जीवन में स्वाद क्या है ? अर्जुन, अर्जुन ! जीवन में तो बहुत सा स्वाद बाकी है। आज अभी अभिमन्यु की मृत्यु का रंज ताजा है, इसलिए यह वैराग्य भले ही दिखाई देता हो, पर हृदय की गहराई में अभी अनेक आशायें भरी हुई हैं, और उन्हें पूरी किये बग़ैर चैन भी नहीं मिलने का। अर्जुन ! दूसरी बातों को तो अब जाने दे। तूने जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा की है; लेकिन द्रोणाचार्य हर तरह से उसकी रक्षा करनेवाले हैं। इसलिए मैंने तो एक युक्ति सोच रक्खी है।"

"क्या ?"

"मुझे तो विश्वास है कि तू चाहे जितनी मेहनत कर, फिर भी आज सूर्यास्त से पहले तू जयद्रथ के पास तक नहीं पहुँच सकता।" श्रीकृष्ण बोले।

"मुझे तो ऐसा लगता है कि मैं ज़रूर पहुँच जाऊँगा।" अर्जुन ने जवाब दिया।

"मानलो कि तू न पहुँच सका।"

"तब तो फिर मुझे मरना ही है।" अर्जुन ने कहा।

"नहीं ! जब तू नहीं पहुँच पावेगा तो सूर्यास्त को थोड़ा समय रह जाने पर मैं अपने सुदर्शन चक्र से सूर्य को ढक दूँगा, जिससे सबको यह मालूम पड़ेगा कि सूर्यास्त होगया है।" श्रीकृष्ण बोले।

"उससे क्या होगा ?" अर्जुन बोला।

"सबको लगेगा कि सूर्यास्त होगया और हम लोग चिता की तैयारी में लग जावेंगे। तब जयद्रथ वग़ैरा, मृत्यु के मुख में से बच गये हों इस प्रकार, खुश होकर इधर-उधर घूमने लगेंगे।" श्रीकृष्ण बोले।

"ज़रूर। उसे तो ऐसा ही लगेगा मानों नया जन्म हुआ है !" अर्जुन बोला।

"ठीक इसी समय ज़रा भी ग़फलत किये बग़ैर तू जयद्रथ की ओर ताक कर तीर छोड़ना, और फिर वृक्ष पर से पका हुआ फल जैसे नीचे गिरता है उसी प्रकार जयद्रथ के धड़ पर से उसका सिर नीचे आ गिरेगा।" श्रीकृष्ण बोले

"जयद्रथ को इस तरह मारें ?" अर्जुन ज़रा झिझकते हुए बोला।

"विजय प्राप्त करना हो और प्रतिज्ञा का पालन करना हो, तो यही मार्ग है। और अगर अभिमन्यु के पीछे यमराज के दरवाज़े जाना हो, तो फिर सूर्यास्त की भी राह देखने की ज़रूरत नहीं है।" श्रीकृष्ण बोले।

"अच्छा, तो फिर जैसा आप कहते हैं वैसा ही करूँगा।" अर्जुन ने कहा।

"एक बात और।" श्रीकृष्ण ने कहना शुरू किया।

"वह क्या ?" अर्जुन ने पूछा।

"जयद्रथ के पिता यहांसे पास ही तपस्या कर रहे हैं। तुझे तीर का ऐसा निशाना लगाना चाहिए कि वह जयद्रथ के सिर को लेकर उसके पिता की गोदी में जाकर गिरे, नहीं तो जयद्रथ का सिर पृथ्वी पर गिरानेवाले के सिर के सौ टुकड़े होजायेंगे, ऐसा उसे शंकर का वरदान है।" श्रीकृष्ण बोले।

"अच्छी बात है। ऐसा ही करूँगा।"अर्जुन ने स्वीकार किया।

"तो अब रथ को आगे लाता हूँ। देख, यह सामने सारी कौरव-सेना खड़ी है। देखले, जयद्रथ कहीं दिखाई देता है ? वह तो सेना के ठीक बीचोंबीच अन्त के एक भाग पर खड़ा है। ठीक सामने गुरु द्रोण ही खड़े हैं। सखा ! अब एक ज़ोर का धावा बोल। जयद्रथ को आज की रात अपनी शय्या में बीतनेवाली नहीं है, यह निश्चय जान।" श्रीकृष्ण ने यह कहकर रथ को द्रोणाचार्य के सामने ला खड़ा किया।

× × ×

द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य का सिर उतार लिया, यह समाचार जब अश्वत्थामा ने सुना तो उसके क्रोध और शोक का पार न रहा। और इसी शोक और क्रोध में उसने सारी पाण्डव-सेना को नष्ट कर डालने के इरादे से नारायणास्त्र का प्रयोग किया।

नारायणास्त्र के छूटते ही चारों ओर अँधेरा होगया। अस्त्रों

में से एकसाथ दूसरे हज़ारों तीर, गदा, तलवार, भाले वग़ैरा निकलने लगे और पाण्डव सेना अभी द्रोण के वध की खुशी मनाकर तृप्त भी नहीं हुई थी कि ऐसा लगने लगा मानों सभी मृत्यु के मुँह में चले जा रहे हैं।

"अर्जुन!" युधिष्ठिर बोले, "थोड़ी देर पहले तो कौरव-सेना इधर-उधर भाग रही थी, उसे किसने आवाज़ देकर खड़ा कर दिया? ये हमारी सेना के चारों ओर जो अनेक प्रकार के अस्त्र उड़ते हुए दिखाई देते हैं, यह किसका प्रताप है?"

अर्जुन ने चिढ़कर जवाब दिया—"धर्मराज युधिष्ठिर! आपने असत्य बोलकर द्रोणाचार्य को मरवाया, इससे क्रोधित होकर गुरुपुत्र अश्वत्थामा ने नारायणास्त्र का प्रयोग किया है। भाई साहब, आपने बहुत बुरा किया। द्रोण चाहे जैसे हों, फिर भी हमारे गुरु ही तो थे। आपको वह हमेशा अजातशत्रु कहते थे; इसी कारण किसी और के कहने पर विश्वास न करते हुए उन्होंने आपसे पूछा। आपने सत्य के लिबास में असत्य बोला। पर गुरु द्रोण ने आपके कथन पर विश्वास किया और शस्त्र छोड़ दिये। भाईसाहब! इस पाप का प्रायश्चित्त तो अब हम सबको करना ही पड़ेगा। गुरुपुत्र ने जिस नारायणास्त्र का प्रयोग किया है वह हम सबका विनाश कर देगा।"

अर्जुन यह कही रहा था कि नारायणास्त्र का प्रताप बढ़ते हुए ऐसा मालूम होने लगा मानों सारी पाण्डव-सेना के चारों ओर कालाग्नि व्याप गई हो। चारों ओर हाहाकार मच गया और

पाण्डव-सेना के योद्धा नारायणास्त्र से बचने के लिए इधर-उधर भागने लगे।

अर्जुन के उलहने से युधिष्ठिर दीन होगये और क्रुद्ध होकर बोले—"द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न! तुम अपनी सेना को लेकर तुरंत ही वापस चले जाओ। सात्यकि! आप भी अपने यादव वीरों की रक्षा करने के लिए जहाँ जाना हो वहाँ चले जाइए। वासुदेव अपने लिए स्वयं रास्ता कर लेंगे। सब योद्धा जहाँ उन्हें मार्ग मिले और बच सकें वहाँ भाग जायें और अपनी रक्षा करलें। भीष्म और द्रोण रूपी दो महासागरों को तो मैं तर गया, लेकिन आज इस अश्वत्थामा रूपी गढ़े में डूब जाने वाला हूँ। जहाँ मेरे भाई अर्जुन को ही मेरा अपराध मालूम पड़ता हो, वहाँ दूसरे किसीसे क्या कहें? मैं अभी अग्नि में प्रवेश कर रहा हूँ। दुर्योधन भले ही सुखपूर्वक पृथ्वी का राज्य करे।"

युधिष्ठिर के ऐसे वचन सुनकर पास में खड़ा हुआ भीमसेन बोला—"अर्जुन! आज तक युधिष्ठिर ने धर्म की बातें कहकर हमें हैरान किया और आज जब युधिष्ठिर धर्म की बातें करना जरा भूले तो वह धर्म अब तेरी जबान पर चढ़ गया, क्यों? द्रोण को हमने अधर्म से मारा यह ठीक है, लेकिन द्रोण गुरु के अधर्म का भी तौल किसी दिन करके देखा है? अर्जुन! जो लोग दूसरों के दोषों को न देखकर केवल अपना ही दोष देखा करते हैं, वे मोक्ष-मार्ग में आगे चढ़ते होंगे, लेकिन व्यवहार में तो एकदम कोरे ही रहते हैं। महाराज युधिष्ठिर ने जो-कुछ किया वह ठीक ही था,

इसलिए तुझे उनको उलहना देना ठीक नहीं है।"

इधर भीम बोल ही रहा था कि इतने में श्रीकृष्ण अर्जुन के रथ पर चढ़ गये और पाण्डव-सेना को सम्बोधन करके ज़ोर से कहने लगे—"पाण्डव-सेना के सेनापतियो! अश्वत्थामा ने नारायणास्त्र का प्रयोग किया है। इसलिए तुम लोग अगर रथ में बैठे हो तो रथ में से उतर पड़ो, हाथी पर हो तो हाथी पर से नीचे उतर जाओ, घोड़े पर हो तो घोड़े पर से उतर जाओ और तुम्हारे पास जो शस्त्र हो उसे छोकर शांति के साथ नीचे खड़े रहो। नारायणास्त्र को शान्त कर देने का यही एक उपाय है।"

श्रीकृष्ण के यह कहने के साथ ही अर्जुन रथ पर से नीचे उतरा और अर्जुन की देखादेखी सभी योद्धा नीचे उतर गये।

पर भीमसेन यह कैसे मानता?

"अर्जुन! तूने महाराज को उलहना दिया है, तो मैं अकेला ही नारायणास्त्र का सामना करने के लिए जाता हूँ, और देखता हूँ कि यह द्रोण का पुत्र मेरा क्या कर सकता है।" यह कहता हुआ भीमसेन ठीक बीचोंबीच चला गया और नारायणास्त्र की प्रलयकारी अग्नि उसके चारों ओर घिर गई।

"श्रीकृष्ण!" अर्जुन घबराकर बोला, "देखिए, भीमसेन तो अन्दर चला गया। हम अगर नहीं जायेंगे तो वह न जाने क्या का क्या कर बैठेगा।" और तुरंत ही श्रीकृष्ण तथा अर्जुन भीम के पीछे दौड़े आये।

भीम ठेठ अन्दर पहुँच गया था। दोनों वीर वहाँ पहुँचे और

अर्जुन ने बड़ी मेहनत से हाथ पकड़कर भीमसेन को बाहर निकाला।

"भीमसेन! तुम तो बड़े जबरदस्त निकले! यह श्रीकृष्ण सारी सेना को कहते हैं कि 'अपने वाहनों पर से नीचे उतर जाओ और हथियार छोड़कर शान्त खड़े रहो।' उनका कहना भी नहीं माना?" अर्जुन ने कहा।

"द्रोण को मारने का यश भाईसाहब को देने के बदले जब तू सब सेना के सामने उनकी बेइज्जती करने लगा, तब भीम के लिए दूसरा उपाय ही क्या था?" भीम ने कठोरता के साथ कहा।

"भाई भीमसेन!" श्रीकृष्ण ने कहा, "तू ठीक कहता है, और अर्जुन भी ठीक कहता है। आज तो तुम सब युद्ध के भूखे हो, सो एकबार खूब पेट भरके लड़लो; फिर जब युद्ध के अंत में विचार करने बैठेंगे, तब क्या धर्म और क्या अधर्म इसका निर्णय कर लगे। या फिर ईश्वर ने प्रत्येक मनुष्य के हृदय में धर्माधर्म का जो सूक्ष्म काँटा (तराज़ू) लगा दिया है उसीसे हरेक अपना-अपना निर्णय कर लेगा और हरेक को अपने उस निर्णय के अनुसार इस विजय का स्वाद आवेगा। आज तो भीमसेन! तुझे रथ पर से नीचे उतरकर अर्जुन के समान ही हथियार छोड़कर खड़ा रहना चाहिए।"

भीमसेन ने श्रीकृष्ण का निर्णय स्वीकार किया और प्रति-स्पर्धी के अभाव में अश्वत्थामा का नारायणास्त्र शान्त होगया।

: १० :

अशस्त्र वध

महाराज युधिष्ठिर अपने तंबू में एक सुनहले पलंग पर लेटे हुए थे। उनके शरीर में जगह-जगह घाव हो रहे थे और उनकी मरहम-पट्टी होरही थी। कितने ही दास-दासियाँ उनकी सार-सम्हाल कर रहे थे। उनके चेहरे पर दुःख और ग्लानि स्पष्ट दिखाई दे रही थी।

अपने तंबू में श्रीकृष्ण और अर्जुन को आते देख युधिष्ठिर बोले, "क्यों श्रीकृष्ण ! ऐसे बेवक्त आप यहाँ कैसे ?"

"आप तो कर्ण के साथ युद्ध कर रहे थे। वहाँसे एकाएक आप अदृश्य होगये। यह देख मुझे चिन्ता हुई और खोज करते समय समाचार मिला कि आप अपने खीमे में चले आये हैं, इसलिए हम लोग आपको खोजते हुए यहाँ चले आये।" अर्जुन ने जवाब दिया।

"बहुत अच्छा किया भाई, जो मेरी खोज करते-करते इधर आगये।" युधिष्ठिर लेटे-लेटे उठ बैठे और कहने लगे, "मेरे बड़े भाग्य जो मेरी खोज करते हुए तुम यहाँ आपहुँचे। पर अर्जुन, कर्ण को तो मार आये हो न ?"

"महाराज ! अभी तो वह जीवित है और प्रलयकाल की अग्नि की भाँति हमारी सेना का संहार कर रहा है।" अर्जुन बोला।

"जहाँ तू होगा वहाँ और क्या होगा ? अर्जुन ! तुझपर

मैंने आशा के जो बड़े-बड़े महल खड़े कर रक्खे थे वे सब आज टूटकर गिर पड़े। भीमसेन ही मेरा सच्चा भाई निकला। उसने हम सबको कई संकटों में से बचाया और आज भी वह हज़ारों हाथियों और अनेक महारथियों का नाश किये बग़ैर छावनी में लौटनेवाला नहीं है। तू आचार्य द्रोण का प्रिय शिष्य माना जाता है; तेरे पास गांडीव, रथ, तूणीर आदि सभी साधन हैं; भगवान शंकर जैसों ने तुझे पाशुपतास्त्र दिया और श्रीकृष्ण जैसे तेरे सारथी बने; इतने पर भी तेरे हाथों कर्ण अभी नहीं मरा! अर्जुन! तूने तो कर्ण को मारने की प्रतिज्ञा की है, फिर भी 'कर्ण तो अभी जीवित है' कहते हुए तुझे शर्म नहीं आती? मुझे जो चोटें लगी हैं उन्हें देख। अगर पहले से ही मुझे तेरी निर्वीर्यता का ख़याल होता, तो युद्ध की तैयारी करने के पहले ही हम चारों विचार करते, और तुझ पर ज़रा भी आधार न रखते। युद्ध को शुरू हुए आज चौदह दिन होगये, लेकिन तू तो रथ में बैठकर इधर-उधर दौड़-भाग ही करता रहा है। भीष्म को शिखंडी ने मारा; जयद्रथ को मारना तेरे लिए भारी होगया था, और श्रीकृष्ण न होते तो तुझे ही चिता में जलना पड़ता; द्रोण का वध तो किया धृष्टद्युम्न ने और उसमें मेरा अधर्म बताने तू झट दौड़ आया। और यह सूतपुत्र कहलानेवाला कर्ण जिस प्रकार सिंह बकरों को मार डालता है उसी प्रकार हमारी सेना का संहार कर रहा है, फिर भी तेरी आँखें नहीं खुलतीं। अर्जुन! तेरा गाण्डीव किसी दूसरे को देदे और श्रीकृष्ण के रथ में किसी दूसरे को

बैठा, तो उसकी मेहनत कुछ काम तो आये। अर्जुन! तू मुझे यहाँ क्यों अपना मुँह दिखा रहा है?" बोलते-बोलते महाराज युधिष्ठिर का शरीर काँपने लगा, उनकी आवाज़ थरथराने लगी। उनकी आँखों में क्रोध था, और उनके घाव मानों पट्टियों के अंदर से फटे जा रहे थे।

अर्जुन युधिष्ठर के पलंग के पास बैठे-बैठे सब बातें सुन रहा था। उसका मन अन्दर-ही-अन्दर न जाने कहाँ जाता था। उसका सारा शरीर काँपने लगा, होंठ फड़कने लगे, और आँखों में खून उतर आया। एकाएक उसका हाथ अपनी कमर पर गया और नागन के समान तलवार म्यान में से बाहर निकल आई।

श्रीकृष्ण यह देख एकाएक खड़े होगये और अर्जुन का हाथ पकड़ते हुए बोले—"अर्जुन! यह क्या?"

"श्रीकृष्ण! इस समय हट जाइए। आज युधिष्ठिर का सिर सुरक्षित नहीं है।"

"अर्जुन! तू यह क्या कह रहा है और किसके सामने बोल रहा है, इसका भी भान है?" श्रीकृष्ण बोले।

"श्रीकृष्ण! मुझे छोड़ दीजिए।" अर्जुन क्रोध में काँपता हुआ बोला, "मुझे इस समय कुछ भी नहीं सूझ रहा है। मेरा गाण्डीव किसी दूसरे को देने की जो बात करे उसका अन्त कर देने की प्रतिज्ञा है।"

"हाँ, मैं जानता हूँ कि तेरी ऐसी प्रतिज्ञा है।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"तो फिर आज युधिष्ठिर का सिर धड़ से अलग होना ही चाहिए।" अर्जुन ने कहा।

"अर्जुन किसके सिर की बात कर रहा है यह भी तुझे भान है?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"श्रीकृष्ण! आप सामने से हट जाइए।" अर्जुन ने जोर देकर कहा, "हम बरसों से सहन करते आ रहे हैं। पर अब सहन नहीं हो सकता। यह जबतक ज़िन्दा रहेंगे तबतक हमारी गाड़ी ठीक रास्ते चलनेवाली नहीं है।"

"वीर अर्जुन! कुन्ती के पुत्र अर्जुन! द्रोण के शिष्य अर्जुन! ये शब्द तेरे मुँह को शोभा नहीं देते।" श्रीकृष्ण ने कहा, "कुन्ती का पुत्र अर्जुन तो ज़रूरत से ज्यादा बोलता ही नहीं, और जब बोलता है तब चमड़े की जीभ से नहीं बल्कि गाण्डीव की ज़बान से बोलता है।"

"श्रीकृष्ण! यह ठीक है कि मैंने अपने रथ की बागडोर आपको सौंपी है, पर इस समय महरबानी करके आप यहाँसे हट जाइए। मैं सिर्फ़ एक वार करने की छूट चाहता हूँ।" अर्जुन बोला, पर उसका हाथ ढीला पड़ता जा रहा था।

"अच्छी बात है। लेकिन वह वार तू मेरी गर्दन पर कर। मित्र के हाथ की मौत भला कहाँ नसीब होती है!" श्रीकृष्ण बोले।

"सखा श्रीकृष्ण! आप युधिष्ठिर को बचाकर अर्जुन को गँवा देने को तैयार हों तो ठीक है।" अर्जुन ने कहा, और यह कहते ही उसकी तलवार वापस म्यान में चली गई।

"अर्जुन को गँवाने को तो मैं क्या आज सारा त्रिभुवन भी तैयार नहीं है। यह अठारह अक्षौहिणी की जो बाज़ी लगा रक्खी है वह अर्जुन ने ही तो लगा रक्खी है, यह मालूम है न ?" श्रीकृष्ण बोले।

"नहीं, नहीं ! मैंने नहीं। यह तो जो पलंग पर पड़े हुए हैं उन्होंने लगा रक्खी है।" अर्जुन ने युधिष्ठिर की ओर इशारा किया।

"अच्छा, श्रीकृष्ण, अब आप जाइए। मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार युधिष्ठिर को नहीं मारता, इसलिए तलवार का वार मैं अपनी गर्दन पर ही करूँगा। आप रथ लेकर युद्ध में जाइए।" अर्जुन बोला।

"महाराज युधिष्ठिर !" श्रीकृष्ण ने कहा, "सुना आपने ?"

"कभीसे सुन रहा हूँ। कई बार आत्महत्या करने का विचार करता हूँ, लेकिन आत्महत्या करनेवाले को असुर लोक में जाना पड़ता है इसी विचार से अपनेको रोक लेता हूँ।" युधिष्ठिर बोले।

"अर्जुन ! तो देख, हम सब ऐसा रास्ता निकालें जिससे तेरी प्रतिज्ञा पूरी होजाय। युधिष्ठिर तेरे बुजुर्ग हैं। बड़ों को तुकार से बोलना और उनका अपमान करना, उनके वध के बराबर है। इसलिए तू युधिष्ठिर को तू कहकर सम्बोधन कर और उनका अपमान कर, ऐसा करने से तेरी प्रतिज्ञा का पालन होजायगा और मेरी बात भी रह जायगी।" श्रीकृष्ण ने रास्ता निकाला।

इस मार्ग को अनिच्छा से स्वीकार करते हुए अर्जुन बोला—

"धर्म के ढोंगी युधिष्ठिर ! पाण्डवों का अनिष्ट करनेवाला तू ही है। आज तक बड़ा भाई बनकर तूने हम सबसे खूब सेवायें करवाई हैं और अपनी भूलों का नतीजा भी हमने खूब सहन किया है। जब-तब धर्म के नाम पर तू अपने विचारों को हमपर लादता रहता है और इस तरह हमारे क्षत्रिय-जीवन को तूने धूल में मिला दिया है। जुआ खेला है तूने और बनवास भोगा हमने; प्रतिज्ञायें तूने कीं और नपुंसक बनके हमें रहना पड़ा; मुकुट तो तू पहनेगा और लड़ाई के ज़ोखिमों को हम सहन करें। युधिष्ठिर ! भला तेरे कितने पापों को गिनाऊँ ?"

अर्जुन कहता ही जा रहा था कि श्रीकृष्ण ने बीच में ही उसे रोक दिया—"अर्जुन ! बस; अब बहुत होगया। युधिष्ठिर का उचित से ज्यादा वध होगया। उठ; अब हम चलें।" यह कहकर श्रीकृष्ण उठ खड़े हुए।

लेकिन अर्जुन नहीं उठा।

"अर्जुन ! चल। सब हमारी राह देखते होंगे।" श्रीकृष्ण बोले।

लेकिन सुनता कौन ? अर्जुन के कान तो उसके अन्तर की गहराई में गहरे उतर गये थे। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के कन्धे को थपथपाया, लेकिन अर्जुन ने उनके सामने देखा नहीं। उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई और थोड़ी देर में तो उसकी हिचकी बँध गई।

"अर्जुन, सखा अर्जुन ! यह क्या कर रहा है ?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"सखा श्रीकृष्ण ! मुझे तो मर ही जाना चाहिए। धर्मराज युधिष्ठिर को मैंने जो-कुछ कहा, उसका मुझे पछतावा हो रहा है। क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? मौत ही इसका एक रास्ता दिखाई देता है।" अर्जुन सिसकता हुआ बोला।

"अर्जुन ! यह पागलों जैसी बातें क्यों करता है ? 'खुद मरूँ या दूसरे को मारूँ' इसके सिवाय दूसरी बात जीभ से नहीं निकलती क्या ?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"श्रीकृष्ण ! अब आप जाइए। एक बार आपका कहना मान लिया।" अर्जुन चिढ़कर बोला।

"श्रीकृष्ण ! अब हम लोगों का क्या होनेवाला है, यह मुझे कुछ भी समझ में नहीं आता।" युधिष्ठिर बोले।

"युधिष्ठिर ! घबराइए नहीं।" श्रीकृष्ण बोले, "अर्जुन ! तुझे पश्चात्ताप करने की ज़रूरत नहीं। तेरे हृदय की गहराई में जो थोड़ी-बहुत बातें तूने दाब रक्खीं होंगी वे आज बाहर निकल आईं, इसमें प्रायश्चित्त किस बात का ? भीम के जब मन में आता है तब बड़-बड़ करके अपने जी का गुबार निकाल देता है। पर तू ज़्यादा गम्भीर है, इसलिए युधिष्ठिर के बुरा मानने का ख़याल कर तू बात को दबा जाता है।"

"तो भी मुझे प्रायश्चित्त तो करना ही है। मुझे खुद ही अपना वध करना है।" अर्जुन बोला।

"सखा ! जैसे पहले रास्ता निकाला वैसे ही इसका भी रास्ता निकल सकता है। जिस तरह से तूने अपने मुँह से युधिष्ठिर का

वध किया, उसी तरह अपने ही मुँह अपना गुणगान करे तो वह तेरा वध होजायगा।" श्रीकृष्ण बोले।

अर्जुन एकदम हर्ष के आवेश में आकर अपनेआप अपनी तारीफ़ करने लगा, और आज तक उसने जो-जो पराक्रम किये थे उन सबका अतिशयोक्ति के साथ वर्णन शुरू किया। यह सारा वर्णन करते समय उसको रोमांच हो आया। उसके मुँह पर हर्ष था, उसकी आँखों में गर्व था, और उसके सारे शरीर में एक प्रकार का जोश था।

"अर्जुन! बस, अब चलो। सब हमारी राह देखते होंगे।" श्रीकृष्ण फिर एक बार बोले।

अर्जुन तुरन्त खड़ा हुआ और युधिष्ठिर की गोदी में सिर रखकर बोला, "महाराज युधिष्ठिर! मुझे माफ़ कीजिए।"

"भाई अर्जुन! क्षमा तो कौन किसको करे? ऐसे महायुद्धों में—ऐसे दिखाई देनेवाले नर-संहारों में—जैसे जगत् की शुद्धि समाई हुई है उसी प्रकार ऐसे-ऐसे प्रसंगों में हमारी भी आत्मशुद्धि क्यों न हो?" युधिष्ठिर बोले।

"भाईसाहब! आज मैं कर्ण को ज़रूर मारूँगा। मेरी यह प्रतिज्ञा सत्य ही समझिए। धर्मराज! मुझे आशीर्वाद दीजिए।" अर्जुन बोला।

"अर्जुन! सुख से जा। तुझे मेरे अनेक आशीर्वाद हैं। कर्ण को मारकर जल्दी ही आना।" युधिष्ठिर ने अर्जुन का सिर सूँघा।

अर्जुन और श्रीकृष्ण रथ में बैठकर सीधे रण-क्षेत्र गये।

: ११ :

शतरंज के सभी मोहरे एकसे

युद्ध के सत्रहवें दिन सूर्यास्त होने से पहले कर्ण के रथ का पहिया पृथ्वी में धँसने लगा और परशुराम के श्राप से उसकी अस्त्रविद्या भी उसे छोड़कर चली गई। अपने एक हाथ से रथ के पहिये को पृथ्वी से बाहर निकालता हुआ और दूसरे हाथ से गांडीव-धारी अर्जुन से टक्कर लेता हुआ महारथी कर्ण अंत में मारा गया और अर्जुन तथा श्रीकृष्ण ने कर्ण के धराशायी होने का समाचार युधिष्ठिर को सुनाया।

अठारहवें दिन शल्य सेनापति हुए और दिन समाप्त होते-होते महाराज युधिष्ठिर के हाथों युद्ध में मारे गये। उसके बाद महाराज दुर्योधन तालाब में जाकर छिपे और बाद में वहीं भीम-सेन के हाथों गदा-युद्ध में मारे गये।

इस प्रकार अठारह दिन का महाभारत-युद्ध समाप्त हुआ और युद्ध के अंत में पाण्डव विजयी हुए। दुर्योधन की मृत्यु के बाद पाण्डव निस्तेज और अनाथ कौरव-सेना की छावनी में दाखिल हुए।

छावनी के दरवाजे पर आकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन का रथ खड़ा किया और कहा, "अर्जुन! तू रथपति है और मैं तेरा सारथी हूँ, इसलिए शिष्टाचार की खातिर रोज़ मैं पहले उतरता

था और बाद मैं तू उतरता था। लेकिन आज रथ पर से तू पहले उतर; अपना गाण्डीव और तरकस भी उतारले। मैं बाद में उतरूँगा। इस बारे में मुझसे कुछ पूछने की ज़रूरत नहीं है।"

श्रीकृष्ण के यह कहते ही गाण्डीव और तरकस लेकर अर्जुन रथ से उतर गया और उसके बाद श्रीकृष्ण उतरे। श्रीकृष्ण के उतरते ही सारा रथ जल उठा।

अर्जुन और उसके भाई रथ को जलते देख बड़े चकित हुए। तब श्रीकृष्ण ने कहा, "अर्जुन! भीष्म और द्रोण के दिव्यास्त्रों से यह रथ अंदर ही अंदर पहले ही से जल रहा था, लेकिन मैंने अपनी माया से इसे टिका रक्खा था।"

"श्रीकृष्ण! यह रथ तो वरुण का था न?" अर्जुन ने पूछा।

"हाँ, वरुण का था और वरुण के पास ही जायगा। महाराज युधिष्ठिर! आपको मालूम होगा कि ईश्वरी संकेत की सिद्धि के लिए अर्जुन को वरुण का यह रथ मिला था। आज आपकी विजय होकर ईश्वरी संकेत सिद्ध हुआ, इसलिए अर्जुन का अवतार-कृत्य भी पूरा होगया।" श्रीकृष्ण बोले।

"महाराज श्रीकृष्ण! यह तो बड़े आश्चर्य की बात है।" युधिष्ठिर बोले।

"युधिष्ठिर! आप तो धर्मतत्त्वों के जाननेवाले हैं, इसलिए यह तो जानते ही होंगे कि जगत् में इसके पहले भी ऐसे अनेक महाभारत-युद्ध हुए हैं और अर्जुन जैसे अनेक अवतारी पुरुषों ने विजय प्राप्त की है। जबतक यह सृष्टि चलेगी तबतक इसी प्रकार

दुर्योधन उत्पन्न होते रहेंगे और ऐसे दुर्योधनों की जाँघ चीरकर उनके सिर में लात मारनेवाले भी उत्पन्न होते ही रहेंगे। आज यह काम अर्जुन और भीमसेन ने किया है, भूतकाल में दूसरे भीम और अर्जुन थे, भविष्य में नये भीम और अर्जुन पैदा होंगे। इन सब अर्जुनों को अपने कार्य के लिए दिव्य अस्त्रों की ज़रूरत होती है, और सनातन ऋषि वरुण ऐसे अधिकारी पुरुषों की इस ज़रूरत को पूरी करते हैं। आज अर्जुन का यह रथ जल गया, इससे यही समझना चाहिए कि जिस काम के लिए अर्जुन का अवतार हुआ था वह अब पूरा होगया है।"

"महाराज! अबतक भला यह रथ क्यों नहीं जला था?" युधिष्ठिर ने कहा।

"युधिष्ठिर! युद्ध शुरू होने से पहले आपने मुझे कहा था कि इस अर्जुन का हाथ मैं तुम्हें सौंपता हूँ। इसलिए मैंने अपने प्रभाव से अबतक अर्जुन को बचाया है। पाण्डवो! आज हम कौरवों की इस निराधार छावनी में प्रवेश कर रहे हैं। आप यह अभिमान अपने मन में कभी न रक्खें कि आपने कौरवों को धर्मयुद्ध से ही जीता है। यह आप निश्चित समझें कि खुद मैंने भी अधर्म में जहाँ-जहाँ मदद की है उस सबका इस देह को भी फल भोगना पड़ेगा। इस दुनिया में कितनी बार ज़हर से ही ज़हर का नाश होते देखा गया है। उसी प्रकार इस युद्ध में भी कई बार हुआ है। आज तो अब आप विजयी हुए हैं। इस विजय का अच्छी तरह भोग करो। कुछ समय के बाद जब सब शांति होगी तब आपको

अपनेआप मालूम होजायगा कि इस विजय के अंदर कितना स्वच्छ जल था और कितना कचरा था।" श्रीकृष्ण ने समझाया।

"महाराज श्रीकृष्ण! हमें इस युद्ध में जो विजय मिली है वह तो आपकी सहायता से ही मिली है। इस विजय में मैं तो अर्जुन का भी कोई बहुत श्रेय नहीं मानता। आप अगर न होते तो भीष्म ने दो बार अर्जुन को जब परेशानी में डाल दिया था तब कौन हमारी सहायता करता? आप न होते तो शिखंडी को सामने रखकर भीष्म का संहार करने की प्रेरणा अर्जुन को कौन करता? आप न होते तो द्रोण के हाथ में से शस्त्र नीचे रखने की युक्ति कौन सुझाता? आप न होते तो हम दोनों को आत्म-हत्या करने से कौन रोकता? आप न होते तो कर्ण के बाण पर बैठे हुए सर्प से अर्जुन की रक्षा कौन करता? आप न होते तो दुर्योधन की जाँघ में गदा मारने की किसे सूझती? आप न होते तो इस रथ पर से अर्जुन को कौन नीचे उतारता? ये तो इन अठारह दिन के बड़े-बड़े प्रसंग ही हैं। बाकी तो हमारे सारे जीवन में छोटे-मोटे प्रसंगों पर, श्रीकृष्ण, आप न होते तो हम तो जी भी नहीं सकते थे। इसलिए, हे केशव! मैं तो आपको ही इस विजय का सारा श्रेय देता हूँ।" युधिष्ठिर ने अत्यन्त आदरपूर्वक कहा और श्रीकृष्ण के पैरों में पड़ गये।

"महाराज युधिष्ठिर! पैरों में पड़ने का पात्र तो मैं हूँ। आप अर्जुन के बड़े भाई हैं, इसलिए मेरे भी बड़े भाई हैं। यह बतलाइए, कि अब मेरा कोई और काम है?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"श्रीकृष्ण ! आप ही कर सकें ऐसा एक काम और बाक़ी रह गया है। इस युद्ध के सब समाचार हस्तिनापुर पहुँच गये हैं। यह आज तो नहीं मालूम हो सकता कि इस युद्ध में हमने धर्माचरण किया या अधर्माचरण। लेकिन महासती गांधारी युद्ध के समाचार सुनकर अत्यन्त दुःखी होंगी और अपने पुत्रों का नाश हो जाने के कारण उनका क्रोध करना भी स्वाभाविक ही है। पर गान्धारी का क्रोध तो हमारे लिए मानों साक्षात मृत्यु ही है। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि आप हस्तिनापुर जाकर जैसे भी हो गांधारी को शान्त कीजिए, नहीं तो वह सती अगर भीम या अर्जुन को श्राप दे देगी तो हमारी इस विजय में खलल पड़ जायगा। महाराज ! यह कार्य आपके सिवा और किसीसे नहीं होगा। इसलिए आप हस्तिनापुर जाकर गांधारी को शान्त कीजिए।"

युधिष्ठिर की यह बात सुनकर श्रीकृष्ण हस्तिनापुर जाने को तैयार हुए और पाण्डव इस विजय का जगत् के कल्याण के लिए अब कैसा और किस प्रकार उपयोग करें इसका विचार करने लगे।

× × ×

पाँचों पाण्डव और सती द्रौपदी हिमालय की ओर चले। एक कुत्ता भी ठेठ हस्तिनापुर से उनके पीछे-पीछे चला आ रहा था।

रास्ते में एक बड़ा-सा तालाब आया। उसके किनारे एक आदमी खड़ा था। ज्योंही पाण्डव तालाब के पास से गुजरे, उसने कहा—"अर्जुन ! मुझे पहचाना ?"

"आप कौन हैं ?" अर्जुन ने पूछा।

"मैं अग्नि हूँ।"

"इस समय यहाँ क्यों खड़े हैं ? अब खाण्डव-वन में नहीं रहते ?" अर्जुन ने पूछा।

"आपके खाण्डव-वन को जला देने के बाद उन सर्प लोगों ने मुझे आराम से राज्य तो करने ही नहीं दिया। उन सर्प लोगों के अन्दर तक्षक आदि जो अराजक युवक हैं, वे किसीको शान्ति से रहने दें ऐसे नहीं हैं। मैंने आपको जब अपनी मदद के लिए बुलाया तभी मुझे यह लगता तो था कि इनको जला डालना इन-पर राज्य करने का सच्चा मार्ग नहीं है। लेकिन यह बात मेरे मन में अच्छी तरह जमी नहीं थी, इसलिए खाण्डव-वन को जलाकर तहस-नहस कर डाला। पर आज उन लोगों ने मुझे खाण्डव-वन में से निकाल दिया है और समय बीतने पर ये लोग आपके वंश से भी अपना बदला लें तो कोई ताज्जुब की बात न होगी।" अग्नि बोला।

"अग्निदेव! आपने खाण्डव-वन को जलाकर उसका त्याग किया और हम हस्तिनापुर को प्राप्त करके उसका त्याग कर रहे हैं।" यह कहकर अर्जुन आगे चलने लगा।

"अर्जुन!" अग्निदेव ने आवाज़ दी, "जाते कहाँ हो ? गाण्डीव और ये दो तरकस वरुण को दिये बग़ैर कहाँ चले ? गाण्डीव के जड़े हुए रत्नों पर मन ललचा गया है क्या ?"

"लोभ तो कोई है नहीं। यही मन में था कि इनको भी अगर

साथ में रक्खा तो क्या हर्ज है ?" अर्जुन ने जवाब दिया, और गाण्डीव तथा तरकस अग्नि के आगे रख दिये।

"हर्ज तो है ही। तुम्हारा जन्म जिस काम के लिए हुआ था वह पूरा होगया, इसलिए इनका तुम्हारे पास रहना न रहना एक ही बात है। यही गाण्डीव आज तुम्हारे हाथ में गाण्डीव का काम नहीं देगा। तुमने यह नहीं देखा कि भीष्म और द्रोण जैसे महारथियों से तोबा करानेवाला यह गाण्डीव श्रीकृष्ण की स्त्रियों को लूटनेवाले डाकुओं के सामने साधारण लकड़ी के समान होगया था ? अर्जुन ! मनुष्यों के भी दिन होते हैं। तुम्हारा एक दिन था; आज नहीं है। एक दिन तुमने हज़ारों शत्रुओं को एक सपाटे में ज़मीन पर सुला दिया था; पर एक दिन तुम ही बभ्रुवाहन के हाथ से रथ में गिर पड़े थे। अर्जुन ! वक्त-वक्त का फेर है। इसलिए शोक मत करो। मनुष्य अगर यह मानना छोड़ दे कि 'मैं बलवान हूँ' और काल भगवान की प्रेरणा से जो-कुछ करे उसमें अभिमान न माने तो सब ठीक है। पाण्डवो ! जाओ। काल भगवान तुम्हें कल्याण के मार्ग पर लेजायँ !"

यह कहकर अग्निदेव ने सबको अशीर्वाद दिया और गाण्डीव तथा दोनों तरकसों को लेकर उस सरोवर में फेंक दिया। तुरत ही सरोवर में से एक हाथ ऊपर आया और गाण्डीव तथा तरकस को लेकर अन्दर चला गया।

अर्जुन मन में गुनगुनाया—"यह काल भगवान का हाथ तो नहीं था ?"

पाँचों पाण्डव और द्रौपदी आगे चले। रास्ते में नकुल गिरा, सहदेव गिरा, देवी पांचाली गिरी और बाद में अर्जुन भी गिर पड़ा।

"भीमसेन! मेरे सिर में चक्कर आ रहे हैं।" यह कहकर अर्जुन बैठ गया।

"भाई अर्जुन! क्यों, क्या हो रहा है?" भीम ने पूछा।

"क्या हो रहा है, यह तो मालूम नहीं होता। लेकिन जी बहुत घबरा रहा है और आँखों के सामने अँधेरा आ रहा है।" अर्जुन बोला।

"युधिष्ठिर! हम लोग आज यहीं ठहर जायें तो कैसा?" भीम ने कहा।

"भीमसेन! नहीं, यह नहीं हो सकता। यह तो मेरे विश्राम की जगह है। प्यारे भीमसेन! देवी पांचाली जहाँ चली गई, वहीं अब मैं भी चला समझो।" अर्जुन बोला।

"अर्जुन! तो तू भी जायगा? हे भगवान, यह क्या हो रहा है?" भीम ने हिम्मत हारते हुए कहा।

"श्रीकृष्ण ने मुझसे कहा था और अग्नि ने भी मुझे पहले ही से सावधान किया था कि तेरा जीवन-कार्य पूरा होगया। पर मैं यह पूरी तरह समझा नहीं। महाराज युधिष्ठिर! अब यह समझ में आ रहा है कि अपना जीवन-कार्य पूरा होने के बाद भी मनुष्य ममता का मारा संसार-सागर में इधर-उधर हाथ-पैर मारता रहता है, और काल भगवान् जबतक उसके शव का नाश नहीं कर डालते तबतक वह इस सागर में तैरने का प्रयत्न करता

ही रहता है। इसका एक उदाहरण मैं खुद ही हूँ। भीमसेन! जिनके प्रताप से हम लोग इस युद्ध में पार उतरे वह श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान थे। उनका अपना जीवन-कार्य पूरा होते ही उन्होंने उसी तरह अपनी देह का त्याग कर दिया जैसे सर्प अपनी काँचली उतार डालता है। न द्वारिका रोक सकी, न सोलह हज़ार स्त्रियाँ, न पुत्र, न चक्र और गदा, और न हम सब ही उन्हें रोक सके। मुझे श्रीकृष्ण 'सखा' कहते थे। इसमें उनका ही बड़प्पन था। परन्तु मैं पामर समझा नहीं, इसलिए मेरा अभिमान बढ़ा—इतना बढ़ा जिसकी कोई हद नहीं! श्रीकृष्ण गये और चोरों ने मुझे लूटा, तब मेरी आँखें पहली बार खुलीं; और उसके बाद तो बहुत बार खुलती और बन्द होती रही हैं। भीमसेन! इस अभिमान ने मेरा नाश किया है, यही समझना। महाराज युधिष्ठिर! अर्जुन का अन्तिम प्रणाम। भीमसेन! इस अभिमान की गठरी आज मेरे हृदय पर कितनी भारी लगती होगी, उसका ख़याल तुम्हें नहीं आ सकता। मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए मनुष्य के हृदय पर ऐसा ही एक प्रकार का बोझा मालूम होता होगा। श्रीकृष्ण! अब एक बार और मेरे सारथी बनोगे? अब मैं आपको पहचान गया, इसलिए भूल नहीं सकता। आजतक तो मैं शिष्टाचार की भाषा में कहता था कि 'यह विजय आपने ही दिलाई है।' पर मनुष्य-मात्र कितना निर्बल है, इसका सच्चा अनुभव तो आज हो रहा है; इसलिए मैं जीऊँगा, और यही मानकर जीऊँगा कि विजय आपकी ही हुई है।

"लेकिन, यह सब व्यर्थ है। भीमसेन! मैं तो चला। एक बार मेरे सारे अभिमान का हिसाब चुकता कर लेने दो। यह भीष्म पितामह खड़े हैं; यह जयद्रथ अपना हिसाब लेकर खड़े हैं; द्रोणाचार्य तो अश्वत्थामा का खाता भी अपने हिसाब में लिख रहे हैं; और कर्ण - सूतपुत्र ?.........नहीं-नहीं, कुन्ती-पुत्र मेरा बड़ा भाई कर्ण भी तो हिसाब लेकर खड़ा-खड़ा हँस रहा है। इन सबके हिसाबों में मेरा भी खाता है और श्रीकृष्ण का भी खाता है। खड़े-खड़े सब मुझे इशारे से कह रहे हैं कि श्रीकृष्ण का खाता उन सबने साफ़ कर दिया है, लेकिन मेरा खाता तो अभी बाक़ी है। पितामह, भाई कर्ण, जयद्रथ, गुरु द्रोण! आप सब जब मुझे अपने कर्ज से मुक्ति देंगे तभी मुझे शांति मिलेगी।"

"भाई अर्जुन! जरा शान्त तो रह। श्रीकृष्ण को याद कर तो जरा शान्ति मिलेगी।" युधिष्ठिर बोले।

"बड़ी मेहनत करता हूँ, लेकिन वह तो दूर-ही-दूर छिपते जा रहे हैं। और मेरे ये सब लेनदार मुझे शांति से बैठने दें तब न। महाराज युधिष्ठिर! प्रणाम। जिस विजय के लिए हम सब जीये उसका जब सार निकालता हूँ तब दिवाला ही दिखाई देता है। भाई-साहब! यह अक्ल आज बहुत देर से आई। इस समय तो विजय के खून से सने हुए इन हाथों में अभी भी बदबू आ रही है। स्वर्ग-गंगा में धोने से यह बदबू चली जाय तो चली जाय, नहीं तो यह बदबू लेकर ही शायद अगला जन्म लेना पड़े। भाई भीम! भाईसाहब युधिष्ठिर! मुझे आज्ञा दो। पितामह! आपका यह

पुत्र भी आया। कर्ण! अब अगर तुम्हारा रथ पृथ्वी में धँसेगा तो मैं उस पहिये को बाहर निकालूँगा।"

महाराज पाण्डु के पुत्र, कुन्ती के बहादुर बेटे, इन्द्र के पुत्र, द्रोणाचार्य के प्रिय शिष्य, पाञ्चाली के प्राण, श्रीकृष्ण के सखा, कर्ण के कट्टर शत्रु, अभिमन्यु के पिता, सुभद्रा के पति, गाण्डीव धारण करनेवाले, सारी पाण्डव-सेना को युद्ध में पार लगानेवाले और युधिष्ठिर के गले में विजयमाला पहनानेवाले अर्जुन ने इसी प्रकार बोलते-बोलते अपने प्राण त्याग दिये!

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

पुस्तक-वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित १५ वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५ नये पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

3-9-89 Sh		
		42926